शिवमूर्ति की कथा-भाषा

(एम.फिल. की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध–प्रबंध)

शोध–निर्देशक
प्रो. मैनेजर पाण्डेय

शोधकर्ता
सर्वेश कुमार सिंह

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली – 110 067
1999

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
School of Language, Literature, & Culture Studies
NEW DELHI-110067, INDIA

Centre of Indian Languages

Dated: 21.07.99

DECLARATION

I declare that the material in this dissertation entitled **"SHIV MURTI KI KATHA BHASA"** submitted by me is original research work and has not been previously submitted for any other degree of this or any other University/Institution.

(Sarvesh Kumar Singh)
Name of the Scholar

Prof. Naseer Ahmad Khan
Chairperson
CIL/SLL&CS JNU,

Prof. Manager Pandey
Supervisor
CIL/SLL&CS JNU

GRAM : JAYENU; TEL. : (91-011) 6107676, 6167557 Extn. : 2217, Fax : (91-011) 6165886, 6106025

आदरणीय दादाजी को समर्पित

विषय सूची

	पृष्ठ संख्या
पुरोवाक्	i - ii
अध्याय - **1**	
हिन्दी कथा-भाषा : विकासमान परिप्रेक्ष्य	1 -11
अध्याय - **2**	
शिवमूर्ति की कथा-भाषा का स्वरूप	12 -24
अध्याय - **3**	
नारी संवेदना और शिवमूर्ति की कथा-भाषा	25 -38
अध्याय - **4**	
त्रिशूल का सामाजिक राजनैतिक यथार्थ और शिवमूर्ति की कथा-भाषा	39 -49
सारांश	50 -54
संदर्भ सूची	55 -56

पुरोवाक्

पुरोवाक

पहली बार शिवमूर्ति का उपन्यास 'त्रिशूल' पढ़ना मेरे लिये एक अद्‌भुत अनुभव था । इलाहाबाद में बी.ए. के दिनों में, जब कि कुछ दिनों तक शिवमूर्ति जी का प्रेरणा पूर्ण सान्निध्य भी था, इसे मैने बार-बार पढ़ा तथा हर बार विवेक की शक्ति विकसित होती गई। सच कहूँ, तो संस्कृति- इतिहास की जो समझ आज थोड़ी बहुत बन पाई है, उसमें त्रिशूल का बहुत बड़ा हाथ है । यह प्रभाव ही था कि शिवमूर्ति जी ने जो भी लिखा, मनोयोग से पढ़ता गया । उनके द्वारा रचित थोड़ी सी कहानियां और उपर्युक्त उपन्यास मेरी साहित्यिक यात्रा में 'प्रकाश स्तम्भ' की तरह है ।

सर, (प्रो० मैनेजर पाण्डेय) की स्वीकृति ने उत्साह पैदा किया । हालांकि दोस्तों ने हंसी उडायी, आखिर कौन जानता है शिवमूर्ति को ? एक उपन्यास और कुछ कहानियों में से क्या निकालोगे ? पर मेरी स्पष्ट धारणा है कि साहित्य वही है जो गुणात्मक हो, और मेरी स्पष्ट राय में शिवमूर्ति ने जो कुछ भी लिखा है वह गुणात्मक लेखन है । अतःउनके द्वारा रचे हुए पर शोध के लिये उन्मुख हुआ ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को अध्ययन की सुविधा के लिये चार भागों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्याय में हिन्दी कथा भाषा के विकास क्रम की चर्चा है । यह क्रम मोटे तौर पर प्रेमचन्द पूर्व प्रेमचन्द युगीन तथा प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी कथा भाषा के रूप में दिखलाया गया है ।

दूसरे अध्याय का शीर्षक 'शिवमूर्ति की कथा भाषा का स्वरूप' है । इसमें सर्वप्रथम भाषा का सामाजिक संदर्भ में अध्ययन किया गया है तत्पश्चात शिवमूर्ति की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय कराने के बाद उनकी कथा भाषा का व्यापक विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है । इस संदर्भ में उनकी कहानियां केन्द्र में रखी गई हैं।

तीसरे अध्याय के केन्द्र में है - नारी संवेदना को प्रकट करने वाली शिवमूर्ति की महत्वपूर्ण कहानियां, जो उनके संग्रह 'केशर कस्तूरी' में संकलित है । इसी संदर्भ में शिवमूर्ति की कथा भाषा की क्षमता का भी आकलन करने का प्रयास किया गया है।

चौथे अध्याय का संबंध शिवमूर्ति के उपन्यास 'त्रिशूल' तथा उसमें व्यक्त सामाजिक राजनैतिक यथार्थ से है । इस अध्याय में सम्प्रदायिकता तथा जातिवाद जैसे ज्वलंत विषयों को उठाने वाले त्रिशूल की प्रासंगिकता का भी विश्लेषण है । 'त्रिशूल' की कथा भाषा भी इस संदर्भ में विश्लेषित की गई है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध मैने प्रोफेसर मैनेजर पाण्डेय के सान्निध्य में पूर्ण किया । इसके रूपाकार लेने में उनका मनोयोग और स्नेहपूर्ण निर्देशन प्राथमिक है । सर की डाट फटकार तथा उनके स्नेहपूर्ण सुझावों के बीच ही यह लिखा गया तथा पूर्ण हुआ । उन्हें हार्दिक श्रद्धा और आदर प्रस्तुत करता हूँ ।

मैं अपने विभाग के प्रो० केदारनाथ सिंह, डा० पुरूषोत्तम अग्रवाल, डा० वीरभारत तलवार, डा० गोविन्द प्रसाद, डा० देवेन्द्र कुमार चौबे तथ डा० द्वारिका वर्मा का भी आभार व्यक्त करना चाहूँगा, जिन्होने मेरी अकादमिक कठिनाइयों का सहर्ष समाधान किया ।

अखिलेश जी, राजेश, ज्ञानेन्द्र, संतोष, उमाकान्त, रीतेश, राजेश मिश्रा, मेनका, नालन्दा, उमा, नीलम, अनूप आदि सहपाठियों के साथ विचारोत्रेजक बहसों ने भी इस शोध प्रबंध को वर्तमान रूप देने में सहायता की । गुल्या का साथ लगतार उत्साहित करता रहा ।

मम्मी पापा का आशीर्वाद शक्ति देता रहा तथा रेखा, सिम्पल, राजन, गुड़िया की स्मृतियां प्रेरणा देती रहती हैं । इलाहाबाद के दिनों के मित्रों, कमल, अजय आदि के प्रति भी कृतज्ञता अर्पित करता हूँ जिन्होने साहित्य से रिश्ता जोड़ने में मदद की । मैं श्री श्याम बिहारी माथुर को भी हार्दिक धन्यवाद अर्पित करता हूँ ।

तिथि : 14-07-99

सर्वेश कुमार सिंह

अध्याय - 1

हिन्दी कथा भाषा: विकासमान परिप्रेक्ष्य

हिन्दी कथा-भाषा : विकास मान परिप्रेक्ष्य

प्रायः अंग्रेजी साहित्यकारों द्वारा यह आरोप लगाया जाता है कि हिन्दी कथा भाषा अभी अपने बनने की प्रक्रिया में है। अंग्रेजी साहित्य लिखने वाले कुछ भारतीय लेखकों ने तो यहाँ तक आरोप लगा दिया है कि हिन्दी की कथा भाषा का अभी तक कोई व्यवस्थित स्वरूप उभर ही नहीं पाया है। अंग्रेजी साहित्य के इन भारतीय लेखकों में सलमान रूश्दी तथा खुशवन्त सिंह प्रमुख है।

अभी कुछ ही समय पहले खुशवन्त सिंह ने आरोप लगाया था कि हिन्दी एक 'दरिद्र' भाषा है। उसमें चूहा शब्द का कोई दूसरा विकल्प नहीं है। इसके साथ ही उन्होंने दावे के साथ कहा था कि हिन्दी के साहित्यकार जो कुछ भी लिखते हैं वह कूड़ा-कचरा से अधिक कुछ नहीं है।

निःसन्देह खुशवन्त सिंह के ये विचार औपनिवेशिक दासता से अब तक ग्रसित एक विकृत दिमाग के विचार है। वैसे भी अश्लील साहित्य का सृजन करने वाले को श्लील और सार्थक साहित्य तथा उसकी भाषा की समझ कैसे हो सकती है। खैर, इन निरर्थक आरोपों से हटकर हम देखें तो आज हिन्दी कथा भाषा ने विकास की कई अवस्थाओं को पार कर एक व्यवस्थित स्वरूप ग्रहण कर लिया है। हिन्दी कथा भाषा आज अंग्रेजी कथा-भाषा से किसी भी प्रकार उन्नीस नहीं है। यह अलग बात है कि ग्लैमर के कारण अंग्रेजी ने बड़ी हैसियत पा ली है।

वस्तुतः हिन्दी कथा भाषा की एक अपनी प्राण शक्ति है जो उसे निरन्तर विकास से प्राप्त हुई है। यह विकास भी कई महान क्रमों से होकर गुजरा है। सुविधा के लिए हम इसके विकास को तीन चरणों में बांट सकते हैं -

१. प्रेमचन्द्र पूर्व हिन्दी कथा-भाषा।

२. प्रेमचन्द्र युगीन हिन्दी कथा-भाषा।

३. प्रेमचन्द्रोत्तर हिन्दी कथा-भाषा।

प्रेमचन्द्र से पूर्व जहाँ भारतेन्दु मण्डल ने हिन्दी कथा भाषा के निर्माण तथा विकासे में योगदान दिया तो वहीं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उसे व्यवस्थित तथा गतिशील बनाया। इसके बाद स्वयं प्रेमचन्द्र ने अपने समय में हिन्दी कथा भाषा को व्यापक तथा समृद्ध बनाया। प्रेमचन्द्रोत्तर काल हिन्दी कथा भाषा के क्षेत्र में प्रयोगों का समय रहा। इन निरन्तर प्रयोगों से ही समृद्ध होकर आज हिन्दी कथा भाषा किसी भी अन्य भाषा से टक्कर ले रही है। अतः अब हम उपर्युक्त तीन चरणों का क्रमशः अध्ययन करेंगे।

१. प्रेमचन्द्र-पूर्व हिन्दी कथा-भाषा :

प्रेमचन्द्र पूर्व हिन्दी कथा भाषा के निर्माण एवं विकास की प्रक्रिया भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से शुरू होती है। पश्चिम में उपन्यास विधा के माध्यम से भाषा के नये-नये प्रयोग हो रहे थे। अतः वे इस विद्या को हिन्दी में लाने को लालायित थे। उन्होंने अपने मित्र संतोष सिंह को लिखा - "जैसे भाषा में अब कुछ नाटक बन गये हैं, अब तक उपन्यास नहीं बने हैं। आप या हमारे पत्र के योग्य जैसे बाबू काशीनाथ या गोस्वामी राधाचरण जी कोई भी उपन्यास लिखे, तो उत्तम हो।"[१]

पर हम देखते हैं कि भारतेन्दु की इस प्रेरणा से अनुवाद ही अधिक हुए, मौलिक रचनाओं की ओर ध्यान कम गया। फलतः इस युग में हिन्दी कथा भाषा का निर्माण आधा-अधूरा ही रहा।

भारतेन्दु युगीन निबन्ध रचनाओं में हमें कहानी के अनेक तत्व विद्यमान मिलते हैं। इनमें लेखक एक काल्पनिक कथावस्तु गढ़कर उसे चरित्र, चित्रण, स्वाभाविक वार्तालाप तथा व्यंग्य एवं हास्य से सजाना खूब जानते हैं। यदि अपनी प्रतिभा के विकास के लिए निबन्ध जैसा उपयुक्त माध्यम उन्हें न मिला होता तो वे अवश्य लघु कथा लिखना आरम्भ कर देते। उस समय जैसे निबन्ध और नाटक प्रधानतः पत्र-पत्रिकाओं में छपते थे, उसी प्रकार तब की कहानियां और उपन्यास भी बहुत करके पत्रों की जिल्दों में ही पढ़ने को मिल सकते हैं। उनमें बहुत कम ही अलग से प्रकाशित हुए हैं। अनेक उपन्यास अधूरे ही छोड़ दिये गये थे, कुछ छोटे थे, कुछ बड़े किसी की भाषा शैली पुराने अलंकारिक ढंग की थी तो किसी की सरल और आधुनिक ढंग की।

भारतेन्दु युग में आधुनिक कलात्मक कहानी का आरम्भ नहीं हुआ था। भारतेन्दु और बालकृष्ण भट्ट की स्वप्न कथायें कहानी और निबन्ध के बीच की रचनाये हैं। इस संदर्भ में आ. रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है – "अंग्रेजी की मासिक पत्रिकाओं में जैसे छोटी-छोटी आख्यायिकायें निकला करती हैं, वैसी कहानियों की रचना 'गल्प' के नाम से बंग-भाषा में चल पड़ी थी। ये कहानियां जीवन के बड़े मार्मिक और भाव व्यंजक खण्ड चित्रों के रूप में होती थी। द्वितीय उत्थान की सारी प्रवृत्तियों का आभास लेकर प्रकट होने वाली 'सरस्वती' पत्रिका में इस प्रकार की छोटी कहानियों के दर्शन होने लगे।"[२]

अतः भारतेन्दु युग में हिन्दी कथा-भाषा का वास्तविक निर्माण और विकास उपन्यास के क्षेत्र में होता है। इस क्षेत्र में सबसे पहला नाम आता है लाला श्रीनिवास दास का। उनके उपन्यास परीक्षा गुरू में स्वाभाविकता तथा मौलिकता दोनों के दर्शन होते हैं। स्वाभाविकता भाषा के क्षेत्र में है, तथा मौलिकता विषय वस्तु के क्षेत्र में। उपन्यास की कथा-भाषा जहाँ पूर्व की आलंकारिक शैली से मुक्त होकर वर्णन तथा वार्तालाप तक पहुंचती है तो वहीं विषयवस्तु अनुवाद के बंधन से मुक्त होकर देश काल से जुड़ता है।

लाला श्रीनिवास दास का यह प्रयत्न बालकृष्ण भट्ट की रचनाशीलता में और भी विकसित होता है। भट्ट जी साहित्य को 'जनसमूह के हृदय का विकास' मानते थे। इस जनसमूह की भाषा ही उनके सृजन का मुख्य आधार बनती है। 'सौ अजान और एक सुजान' इसी दृष्टि से एक सुन्दर उपन्यास है। उपन्यास उपदेश प्रधान है पर हिन्दी कथा भाषा के निर्माण तथा विकास की दृष्टि से उसका विशेष स्थान है। यथार्थ चित्रण की ओर इसमें काफी झुकाव दिखायी देता है। भाषा पात्रों के अनुकूल गढ़ी गयी है। नौकर, दासी, चौकीदार आदि अवधी में बोलते हैं, पुलिस के आदमी उर्दू में। पढ़े लिखे बाबू लोगों की भाषा में अंग्रेजी का भी पुट रहता है – "मैं आप लोगों के प्रपोजल को सैकिण्ड करता हूँ।"[३] भट्ट जी ने अपने इस उपन्यास को देशकाल की सीमाओं में मजबूती से बांधा है। उन्होंने पृष्ठभूमि के चित्रण के लिए अवध का भौगोलिक वर्णन आवश्यक समझा है। इसके अलावा चरित्र के व्यंग्यपूर्ण चित्रण में तो भट्ट जी का कोई

सानी नहीं है - "पानी चार बार छान कर पीता था, पर दूसरे की थाली समूची निगल जाता था। डकार तक न आती थी।"[४]

राधाकृष्ण दास के 'निःसहाय हिन्दू' में कथा भाषा और भी गहरी तथा चटकीली होती है। खासकर वातावरण के चित्रण में उनके हाथों हिन्दी कथा भाषा ने नई ऊंचाइयां प्राप्त की हैं। पात्रों के अनुरूप ही उनकी बातचीत है। यहाँ तक यथार्थ के महीन चित्रण की कोशिश में वे गालियों तक भी पहुंच जाते हैं जो सम्भवतः भारतीय उपन्यास साहित्य में पहला प्रयास लगता है।

तो यथार्थ चित्रण की, भारतेन्दु युग की यह वही भूमि है जिस पर बाद में प्रेमचन्द्र ने कथा साहित्य के विशाल प्रसाद का निर्माण किया। निःसन्देह कथा साहित्य का पूर्ण विकास प्रेमचन्द्र के समय हुआ परन्तु बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्णदास आदि की रचनायें पढ़ने से मालूम हो जाता है कि प्रेमचन्द्र की 'सुधारात्मक यथार्थवादी परम्परा' का हिन्दी के उपन्यास-कहानी साहित्य में पहले ही बीजारोपण हो चुका था। उसी परम्परा का 'सेवासदन' और 'रंगभूमि' में विकास हुआ। पर इस बीच द्विवेदी युगीन चेतना को भी विस्मृत नहीं करना चाहिए जो भाषा से संबंधित थी।

'सरस्वती' के संपादक के रूप में शायद ही कोई ऐसा विषय हो, जिस पर द्विवेदी जी ने टिप्पणियां न लिखी हों, और कम ही उस युग के लेखक होंगे जिनको भाषा का संस्कार न दिया हो। संस्कार का यह स्तर प्राथमिक रूप में व्याकरण का था, क्योंकि नव प्रचलित खड़ी बोली हिन्दी में वैविध्य अधिक था, प्रतिमानीकरण कम, एक समस्या जो किसी न किसी रूप में अब तक चली आती हैं। रेल के तारों से प्रेषित संदेशों में उलझे रहने वाला व्यक्ति मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द्र और निराला को बनाता है।, उनमें भासिक संप्रेषण की शक्ति भरता है, यह जानना और सोचना आज अपने में रोमांचक सा लगता है। आचार्य शुक्ल ने द्विवेदी जी के अवदान पर बड़ी अर्थ-गर्भ टिप्पणी की है -" गद्य की भाषा पर द्विवेदी जी के इस शुभ-प्रभाव का स्मरण जब तक भाषा के लिए शुद्धता आवश्यक समझी जायेगी तब तक बना रहेगा।"[५]

तो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के इस 'शुभ प्रभाव' के फलस्वरूप कथा साहित्य खासकर उपन्यास तथा कहानी की भाषा में मौलिक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। हिन्दी कथा भाषा अब शुद्ध खड़ी बोली की कथा भाषा बनने की ओर अग्रसर होती है अर्थात अर्द्धविराम से पूर्ण विराम तक की व्यवस्थित कथा भाषा। इसके साथ ही उसकी संरचना भी आधुनिक सी दिखने लगती है। 'सरस्वती' में प्रकाशित गुलेरी जी की कहानी 'उसने कहा था' (१९१५ ई.) कथा भाषा की उक्त सभी विशेषताओं को साथ लेकर हिन्दी जगत में प्रकाशित होती है। 'फ्लैश बैक' की लेखन शैली तद्नुरूप भाषा भी साथ लेकर चलती है। लहना सिंह का चरित्र साधारण उपदेश प्रधान भाषा में नहीं वरन असाधारण यथार्थपूर्ण कथा भाषिक संरचना में पर्यवसित होता है। 'उसने कहा था' के अलावा राधिकारमण प्रसाद सिंह की कहानी 'कानों में कंगना' तथा विशम्भर नाथ कौशिक की कहानी 'रक्षाबंधन' भी नवीन कथा-भाषा की दृष्टि से अन्यतम कहानियां हैं। द्विवेदी जी का यह शुभ प्रभाव प्रेमचन्द्र की आरम्भिक 'सौत' 'पंचपरमेश्वर' आदि कहानियों पर भी पड़ा। अब वे हिन्दी कथा भाषा की अनन्त संभावनाओं की ओर आकर्षित हो रहे थे।

कहानियों के साथ-साथ उपन्यास जगत भी द्विवेदी जी के इस 'शुभ प्रभाव' से अछूता न रहा। हरिऔध जी में उपन्यास लेखन की प्रतिभा न थी पर, 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' में 'कथा-विन्यास' की जगह उन्होंने 'कथा-भाषा' पर विशिष्ट प्रयोग ही कर डाला। इस युग में जासूसी, तिलिस्मी प्रकार के उपन्यास बहुतायत में मिलते हैं, पर सामाजिक उपन्यास भी काफी लिखे गये। प्रेमचन्द्र का 'सेवासदन' इसी समय आया जो आदर्शो-मुखी यथार्थवाद की ओर उन्मुख था, पर इसकी कथा भाषा में ताजगी थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु जी के बाद द्विवेदी युग में हिन्दी कथा भाषा का स्वरूप लगभग स्थिर हो जाता है। नवजागरण का वास्तविक प्रभाव खासकर भाषा के क्षेत्र में इसी समय पड़ता है। खड़ी बोली केन्द्र में आती है तथा लोकप्रिय होती है। इसे ही युग की नई चेतना की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम बनाने की चेष्टा की जाती है। द्विवेदी जी इस संदर्भ में अपने प्रयत्न एवं प्रेरणा से एक आधार तैयार करते हैं। इसी आधार पर प्रेमचन्द्र युगान्तकारी साहित्य का सृजन करते हैं।

२. प्रेमचन्द्र युगीन हिन्दी कथा-भाषा :

निःसन्देह आज हमें हिन्दी कथा-भाषा की जो महान तस्वीर दिखायी पड़ती है वह प्रेमचन्द्र के ही हाथों तैयार हुई। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग द्वारा तैयार आधार प्रेमचन्द्र के काम आया, पर यह उतना ही सत्य है कि प्रेमचन्द्र का खुद का प्रयत्न इस संदर्भ में कहीं ज़्यादा है।

उर्दू से हिन्दी में आए प्रेमचन्द्र का आरम्भ उतना उत्साहकारी नहीं दिखता। हालांकि १९१८ में प्रकाशित सेवासदन पूर्ववर्ती कथा साहित्य का अभूतपूर्व विकास है, तथा इसकी कथा-भाषा की संरचना भी नवीन है, पर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के प्रभाव के कारण भाषा बनते-बनते उपदेश प्रधान सी हो जाती है, फलतः साध्य ऊपर और साधन नीचे हो जाता है। यह प्रवृत्ति 'गोदान' से पूर्व प्रेमचन्द्र के सभी उपन्यासों में कम या अधिक, देखी जा सकती है। हालांकि ये सब नवीन कथ्य के तथा पठनीय उपन्यास है पर भाषा के स्वाद के साथ जो पठनीयता गोदान में है या फिर उनकी कुछ महत्वपूर्ण कहानियों में, वह अन्यत्र नहीं। फिर भी, जैसा कि डा. मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं - "प्रेमचन्द्र के हाथों हिन्दी उपन्यास की 'कर्मभूमि' ही नहीं बदली उसका 'कायाकल्प' भी हुआ।"[६] यह बात हिन्दी कहानी के संदर्भ में भी उतनी ही सच है। आगे कथा-भाषा के संदर्भ में गोदान के देय पर विचार करते हुए डा. मैनेजर पाण्डेय ने ये महत्वपूर्ण तथ्य उजागर किये हैं कि गोदान में जिन्दगी की वास्तविकता से उसकी कथा-भाषा का गहरा रिश्ता है। उसमें किसान जीवन की 'यथार्थ चेतना' और भाषिक संवेदनशीलता के बीच गहरी आत्मीयता है।

निःसन्देह गोदान कथा भाषा की दृष्टि से एक ऐसा बहुस्वनिक और बहर्थी उपन्यास है जिसमें एक से अधिक कथा शैलियों का व्यवहार हुआ है। ऐसे उपन्यासों की भाषा उन उपन्यासों से सर्वथा विलग होती है जिनमें शुरू से आखिर तक एक ही अकेली गद्य शैली चलती है। इस दृष्टि से गोदान में यदि वस्तुगत गद्य के दर्शन होते हैं तो महाकाव्यात्मक गद्य के भी, यदि गीतात्मक गद्य के दर्शन होते हैं जो पत्रकारिता की प्रवृत्ति वाले गद्य के भी, यदि जीवन यथार्थ के ग्राम्य गद्य के दर्शन होते हैं तो नेताओं के भाषण, प्रोफेसरों के व्याख्यान वाले लचीले और मानक गद्य के भी। भाषा

प्रयोग के इस वैविध्य के मूल में कथा और चरित्र की व्यक्ति सामाजिक विविधता दृष्टव्य है। गोदान की कथा-भाषा इन सारे संबंध सूत्रों के लगाव और तनाव से भरकर ही स्वरूपित हो पायी है, जिसमें बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के कालतत्व, हिन्दी प्रदेश के अपने स्थल तत्व और पात्रों की चित्तसंज्ञा तथा उनकी भाषिक अभिव्यक्ति के, व्यक्ति भाषिक, वर्ग भाषिक, विभाषिक, मानक भाषिक जैसे अनेक भाषा रूप और साथ ही सर्जक कलाकार की शब्दार्थ सजगता और अर्थवत्ता की साभिप्राय चेतना विद्यमान है। हिन्दी में अब तक बहुस्वनिकता तथा बहुर्थता इन दोनों ही दृष्टियों से न तो इस कथा भाषा का कोई सर्जनात्मक जोड़ खड़ा किया जा सका है न ही कथा भाषा इस संदर्भ में गोदान से आगे जा सकी है। कथा भाषा के संदर्भ में प्रेमचन्द्र का यह महत्व हिन्दी कहानी के लिए भी है। 'कफन', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'ठाकुर का कुंआ', 'पूस की रात', 'ईदगाह' आदि कहानियों के माध्यम से प्रेमचन्द्र ने कहानी की भाषा का स्वरूप लगभग स्थिर तथा नियत कर दिया। कहना न होगा कि कथा भाषा के सर्वोत्तम प्रयोग कहानी में उसी क्षेत्र में आगे किये गये जिसे प्रेमचन्द्र ने तय कर दिया, और जिसे डा. मैनेजर पाण्डेय इंगित करते हैं - "यह कहना अतिश्योक्ति न होगी कि अब तक के कथा साहित्य में वही सामाजिक दृष्टि से सार्थक और कलात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ है जिसके केन्द्र में भारतीय शोषित और दलित जन समुदायों का जीवन संघर्ष और मुक्ति संघर्ष है।"[७]

निःसन्देह प्रेमचन्द्र द्वारा नियत कथा-भाषिक प्रयोगों का यह क्षेत्र उनके बाद महान कथाकारों को आकर्षित करता रहा है। इस संबंध में कथाकारों की एक लम्बी परम्परा है। इसी परम्परा में एक नाम शिवमूर्ति का भी है। जो इस शोध के केन्द्र में है।

३. प्रेमचन्द्रोत्तर हिन्दी कथा-भाषा :

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि प्रेमचन्द्र ने हिन्दी कथा भाषा का एक निश्चित स्वरूप तथा क्षेत्र नियत कर दिया। आगे इसी तरफ अधिकांश कथाकार मुड़ते चले गये। पर हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि प्रेमचन्द्र के समान्तर तथा थोड़ा उनके समय से आगे कुछ महत्वपूर्ण कथाकार भी कथा भाषा को समृद्ध कर रहे थे।

इस लिहाज से जैनेन्द्र, यशपाल, अमृतलाल नागर तथा अज्ञेय और आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी को हम विस्मृत नहीं कर सकते। जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' में भाषा की एक अलग ही भंगिया हमें दिखलायी पड़ती है। वही अज्ञेय के उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' में कथाःभाषा, काव्यभाषा के नजदीक आने की कोशिश करती है। इन दोनों के समन्वित योगदान पर चर्चा करते हुए डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है कि "इन दोनों ने मिलकर 'कथा भाषा' को वर्णन के प्राथमिक स्तर से ऊपर उठाया।"[८] दूसरी ओर प्रेमचन्द्र शैली की आरम्भिक छठा सर्वप्रथम यशपाल में दिखती है। जिनकी कथा भाषा उपन्यास की अपेक्षा कहानी में ही अधिक निखरती है)

प्रेमचन्द्रोत्तर हिन्दी कथा भाषा अपने नये तथा ऊर्जस्वित रूप में सर्वप्रथम रेणु के यहां नजर आती है। रेणु के यहां, प्रेमचन्द्र की परम्परा के विस्तार के साथ-साथ उसका परिष्करण भी हो जाता हे। 'मैला आंचल' उपन्यास तथा 'तीसरी कसम' आदि जैसी कहानियों के माध्यम से प्रेमचन्द्र निर्मित कथा-भाषा को रेणु उसके शिखर तक पहुंचा देते हैं। 'मेला आंचल' की लोकप्रियता का प्रधान कारण है - रेणु का मौलिक भाषा प्रयोग। अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम की संभावनाओं के निरन्तर अविष्कार के क्रम में रेणु ने भाषा के नये प्रयोग किये हैं। नयी भाषाई संरचना को प्रस्तुत किया है। उन्होंने ग्रामीण कथा शैली, किस्सा कहने की प्रणाली, नाटक नौंटकी, साहित्यिक कलात्मक शैलियों, प्रणालियों को भी आधुनिक औपन्यासिक विद्या से समन्वित कर एक नई संरचना की सृष्टि की जिसमें परम्परागत मौखिक साहित्य और औपन्यासिक माध्यम की विशेषतायें, सावयवी रूप में समन्वित हुई। 'मैला आंचल' के अलावा 'परती परिकथा' में भी रेणु की कथा भाषा की यह विशिष्टता मौजूद है। उपन्यास के साथ रेणु ने हिन्दी कहानी में भी भाषा के विशिष्ट प्रयोग किये हैं। 'लाल पान की बेगम' तथा 'तीसरी कसम' जैसी उनकी कहानियां आदिम रसगंध युक्त कथा-भाषा से अनुप्राणित हैं। गांव की धूल माटी से सनी उनकी भाषा में, आंगन की धूप, बेलों की घण्टियां, धान की झुकी हुई बालियां गमकता चावल, मेला-ठेला, हँसी-ठिठौली आदि के वर्णन में गांव ही नहीं, पूरा अंचल उभर आता है।

प्रेमचन्द्रोत्तर अवधि में रेणु के बाद हिन्दी कथा भाषा नये-पुराने, स्वदेशी विदेशी के पारस्परिक संघात में विकसित हुई। प्रेमचन्द्र की परम्परा अविरल बढ़ती चली, पर इसके साथ-साथ कतिपय कथाकार सूक्ष्म अनुभव परक कथा-साहित्य का सृजन भी कर रहे थे जिसमें भाषिक सर्जनात्मकता बौद्धिक उपक्रम से कठिन तो नहीं, पर जटिल जरूर बन जाती है। उपन्यास साहित्य में ऐसे प्रयोग करने वाले कथाकार थे - राजेन्द्र यादव, देवराज, निर्मल वर्मा, आदि । 'वे दिन' 'अजय की डायरी' आदि ऐसे ही भाषिक सर्जनात्मक की रचनाये हैं। उधर प्रेमचन्द्र की परम्परा की भाषिक चेतना को विकसित करने का काम नागार्जुन, रांगेय राघव, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, श्रीलाल शुक्ल तथा राही मासूम राजा आदि ने किया। नागार्जुन ने 'बलचनमा' 'रतिनाथ की चाची' आदि उपन्यासों में तथा अपनी कुछ प्रसिद्ध कहानियों में कथा भाषा को एक सांस्कृतिक स्वरूप देने का प्रयास किया है। उनमें मार्क्सवादी दृष्टिकोण प्रबल है, पर उनकी भाषा विचारधारा का बंधन तोड़ भी देती है। रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूं' शिवप्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरणी' तथा राही मासूम राजा का 'आधा गांव भी कथा भाषिक प्रयोगों के अन्यतम उदाहरण है। इसी परम्परा में श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास 'राज दरबारी' कुछ अर्थो में ज्यादा महत्वपूर्ण है। भाषा, इसमें खुद की संरचनायें तो बनाती-बिगाड़ती ही हैं पर साथ ही साथ कथा में अन्तनिहित कई संरचनाओं को भी बनाती तथा भूमिसात करती है।

कथाभाषा का यह विकास हिन्दी कहानी में भी दृष्टव्य है। 'नई कहानी' आंदोलन तो मुख्यतः 'भाषा प्रयोगों' पर ही आधारित लगता है। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, काशीनाथ सिंह, तथा शेखर जोशी आदि कथाकार इस आंदोलन के चर्चित कथाकार रहे।' राजा निरबंसिया' 'जिन्दगी और जोंक' आदि जैसी कहानियों में भाषा का खुरदुरापन तथा ताजगी के साथ ही यथार्थ को बेलाग आंक पाने की क्षमता भी है। वस्तुतः नई कहानी के भाषिक प्रयोग विविधोन्मुखी है। यहां भाषा निश्चित रूप में एक रस भाषा नहीं है। इसकी विविध छवियां हैं, विविध रंग हैं। इसके भाषिक प्रयोगों में एक ओर अमरकांत का ठेठ गद्य है, दूसरी ओर भन्नू भण्डारी का व्याकरण सम्मत विशेषणहीन गद्य, तीसरी ओर

कमलेश्वर का भावुक संवेदनशील गद्य, तो चौथी ओर राजेन्द्र यादव का प्रयोग बहुल कलात्मक गद्य, पांचवी और शिवप्रसाद सिंह का सटीक शब्दपूर्ण विम्बोपभान मूलक अर्थ प्रधान गद्य है तो यहीं छठीं ओर नरेश मेहता का अभिनव भासिक प्रयोग पूर्ण गद्य है। इन सबसे अलग तथा विशिष्ट है निर्मल वर्मा की कथा-भाषा। वास्तव में निर्मल वर्मा की कथा भाषा में एक विशिष्ट संगीतात्मकता है। लम्बे-लम्बे विशेषणों से भरे उनके गद्य को पढ़ना पियानो पर अंगुलियां चलाने जैसा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नई कहानी की कथा भाषा सम्पन्न तथा प्रयोगधर्मी कथा भाषा है। नई कहानी आन्दोलन के बाद कुछ अन्य आंदोलन भी आये पर वे मुख्यतः नये यथार्थ से ही संबंधित रहे, कथा भाषा बहुत ज्यादा नहीं बदली। कुल मिलाकर यही है हिन्दी कथा भाषा की विकास यात्रा। आज नकेवल यह सुनिर्भित है अपितु व्यवस्थित एवं गतिशील भी है। यथार्थ के किसी भी रूप को व्यंजित करने की इसमें अतुलनीय क्षमता है। शिवमूर्ति ने इसी कथा भाषा का प्रयोग कर इसे आधुनिक बनाने का कार्य किया है। शिवमूर्ति की कथा भाषा प्रेमचन्द्र तथा रेणु की परम्परा में अपना स्थान बनाती है। अब हम अगले अध्याय में उनकी कथा भाषा के स्वरूप का निरूपण करने का प्रयोग करेंगे।

१. डा. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, पृ.९३.

२. आ. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. २७५.

३. डा. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, पृ.९५.

४. - वही -

५. आ. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. २६८.

६. डा. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिा, पृ. २९७.

७. डा. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिा, पृ. २९९.

८. डा. राम स्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ. २१०.

अध्याय -२

शिवमूर्ति की कथा- भाषा का स्वरूप

शिवमूर्ति की कथा-भाषा का स्वरूप

शिवमूर्ति अपेक्षाकृत नए कथाकार हैं। मेरी समझ में उनकी लोकप्रियता का एक महत्वपूर्ण पहलू है - उनके द्वारा प्रयुक्त सर्वथा नवीन तथा प्रयोग बहुला कथा भाषा। अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम की संभावनाओं के निरन्तर आविष्कार के क्रम में शिवमूर्ति ने भाषा के नये प्रयोग किये हैं, नई भाषायी संरचना को प्रस्तुत किया है और भाषा, विचार, अनुभव तथा दृष्टि बिन्दु के पास्परिक संबंधों को उद्घटित किया है। 'त्रिशूल' उपन्यास तथा 'केशर कस्तूरी' की कहानियों का महत्व इस बात में है कि उनमें उन्होंने मुहावरों, कहावतों, गीतों, लोकोक्तियों, लोकदृश्यों, लोकध्वनियों को चित्रवत प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की है।

यह एक सर्वस्वीकृत तथ्य है कि साहित्य एक मूल्यवान सांस्कृतिक सृष्टि है इसलिए कि यह अन्ततः एक विशिष्ट भाषा है, जो रचनाकार की तरफ से प्रयुक्त होती है और जो पाठकों के लिए अनुभव के गहन धरातल पर पहुंच कर रसास्वादन की स्थिति उत्पन्न करती है। भाषा प्रयोग द्वारा साहित्य पाठकों के अनुभव को विस्तृत करता है, उन्हें भाषा बनाने वाले से भी परिचित कराकर अनुभूतियों के नये-नये आयामों का बोध कराता है। इस तरह साहित्य पाठकों की भाषा संबंधी समझ और प्रतिक्रिया दोनों को विकसित और विस्तृत करता है जो पाठकों के दृष्टिकोण निर्माण में उपयोगी होता है। साहित्य में प्रयुक्त भाषा का दूसरा प्रकार्य है - पाठकों की अनुभूति को अधिक परिष्कृत और तीव्र करना। इसलिए अन्य सांस्कृतिक कृतियों की अपेक्षा साहित्यिक रचना द्वारा अनुभवों की सूक्ष्मताओं और जटिलताओं को बेहतर बोध होता है।

(क) भाषा का सामाजिक संदर्भ :

भाषा और समाज दोनों ही अपनी मर्यादा रेखा की सीमा में स्वतन्त्र दिखते हैं पर वास्तव में दोनों एक दूसरे को निर्धारित करते हैं जैसे बदलती हुई सामाजिक यथार्थतायें भाषा की संरचना को रूपान्तरित करती हैं, नई भाषा का निर्माण करती हैं, वैसे ही साहित्यिक कृति में प्रस्तुत वस्तुगत यथार्थता भी भाषा द्वारा प्रभावित तथा

निर्धारित होती है। इसीलिए ग्राम्शी ने लिखा है कि "भाषा एक साथ ही एक जीवित वस्तु भी है और जीवन तथा सभ्यता का अजायबघर भी।"[9] इसके अतिरिक्त भाषा व्यक्ति और समूह की विचार प्रक्रिया अवलोकन-प्रवृत्ति तथा प्रत्यानुभूति को भी कुछ हद तक निर्धारित करती है। इस प्रकार परिवर्तनशील समाज में आम लोग बदलती सामाजिक परिस्थिति के अनुकूल नई भूमिकाओं के साथ-साथ नई भाषा को आत्मसात करने में समर्थ होते हैं। भाषा के इस पक्ष की व्याख्या विस्तार से अपेक्षित है।

सेपिर-हार्फ के अनुसार भाषा का व्यक्ति या समूह की विचार का प्रत्यक्षानुभूति प्रक्रिया पर निर्णायक प्रभाव पड़ता है। भाषाओं की विशेषताओं का विवेचन करते हुए उन्होंने यह स्थापना की है कि व्याकरण, उसकी विशिष्टि ध्वनि अर्थात भाषा के सभी तत्व हमारे विचारों की अभिव्यक्ति तथा भावों-अनुभूतियों के संप्रेषण के माध्यम मात्र नहीं, प्रत्युतवे हमारे सोचने समझने की प्रणाली तथा भावों और प्रत्यक्षानुभूतियों की संख्या और गुण को भी प्रभावित करते हैं। इस तरह विभिन्न समूह के लोग विभिन्न प्रकार के विश्व दर्शन का निर्माण करते हैं और विकास करते हैं। यह सिद्धान्त इस प्रचलित धारणा का खण्डन करता है कि सभी मानव समूहों की चिन्तन प्रक्रिया की एक समान तार्किक संरचना होती है, - भाषा तो उस संरचना का संवाहक मात्र है। इसके विपरीत हार्फ ने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि किसी भाषा का सांचा या संरचना यह निर्धारित करती है कि उस भाषा का बोलने वाला व्यक्ति किस ढंग से सोचता है तथा अवलोकन करता है, वह क्या अनुभव करता है अर्थात् उसकी प्रत्यक्षानुभूति की विषय वस्तु क्या होती है। इसका एक अर्थ यह होता है कि कोई भी व्यक्ति निरपेक्ष तटस्थता के साथ प्रकृति जैसे स्वतन्त्र विषय के वर्णन करने के लिए भी स्वतन्त्र नहीं रहता है बल्कि उसकी भाषा उसे एक खास ढंग से प्रकृति का अवलोकन करने, अनुभव करने एवं चिन्तन करने के लिए प्रवृत्त करती है, जबकि व्यक्ति समझता है कि वह स्वतन्त्र रूप से देख रहा है, सोच रहा है, अनुभव कर रहा है। यही कारण है कि विभिन्न भाषा समूहों के बीच विश्वदर्शन, विचार, भाव और अनुभूति की संख्या और गुण में विभिन्नता पायी जाती है। उनकी विषयवस्तु जैसे प्रकृति, समान हो सकती है पर उसके प्रति उनकी दृष्टि क्या होगी, उसके कौन-कौन

पहलू अवलोकन और अनुभूति के दायरे में आवें, यह सब कुछ भाषा की संरचना, उसके प्रचलित शब्द भण्डार, व्याकरण आदि अप्रत्यक्ष रूप से अनजाने ही निर्धारित करते हैं। इसलिए खासतौर पर एक बड़े समाज में, जहां विभिन्न भाषा संरचनायें प्रचलित हैं, सोचने समझने, अनुभव करने तथा जीवन दृष्टि में विभिन्नतायें पायी जाती हैं।

प्रकृति जैसी समान स्थिति के अनुभवों में भी भाषा - संरचना के आधार पर जो विभिन्नता पायी जाती है उसके कुछ उदाहरणों पर विचार करें - अंग्रेजी तथा इस तरह की भाषाओं में प्रकृति निश्चित वस्तु और घटना के रूप में - चित्रित हुई है जो उस भाषा समूह के भौतिक शास्त्र और खगोलशास्त्र के विचार से मिलता जुलता है। इसी तरह पश्चिम यूरोपीय विज्ञान में प्रयुक्त समय और पदार्थ संबंधी अवधारणायें भी उन देशों की भाषाओं की प्रकृति पर निर्भर है। इन भाषाओं में 'समय' एक वस्तुनिष्ठ अवधारणा है। उल्लेखनीय है कि 'समय' की इस पाश्चात्य भाषायी अवधारणा के फलस्वरूप पश्चिमी देशों में दस्तावेज, डायरी इतिहास की सामग्री संजोने की लंबी परम्परा रही है। इतना ही नहीं इन समाजों में घड़ी, कैलेन्डर, ग्राफ आदि द्वारा समय की अधिक से अधिक ठीक गणना या संख्याकरण होता रहा है तारीख के लिए भी विशिष्ट भाषा का प्रयोग होता रहा है। सारांश यह है कि अंग्रेजी और अन्य पश्चिमी यूरोपीय भाषाओं की संरचना, शब्द भण्डार आदि ने आधुनिक विज्ञान को एक विशेष रंग या पहचान ही नहीं दी हैं बल्कि उनकी भाषा संरचना ने उसे संभव बना दिया। जब अनुकूल, ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक शक्तियों का सम्मिलन इन समाजों में हुआ तो वहाँ जो भाषा संरचना प्रचलित थी, प्रधान थी, उसने उस नवीन ज्ञान-विज्ञान की चिन्तन प्रक्रिया के विकसित होने का मार्ग प्रशसत किया जिसे आज विज्ञान तथा समाज विज्ञान कहा जाता है। इस सिद्धान्त के प्रमाण में विभिन्न भाषाओं के शब्दों के बीच भेद को प्रत्यक्ष अनुभूति और ज्ञानात्मक भेद से जोड़ा गया है। इसलिए निष्कर्ष के तौर पर कहा गया है कि शब्द व्यक्ति तथा समूह की ज्ञान प्रक्रिया, अनुभव प्रक्रिया को बहुत हद तक निर्धारित करते हैं। उदाहरणार्थ अंग्रेजी और चीनी भाषा के कुछ शब्दों को लें,वृद्ध व्यक्ति के लिए अंग्रेजों में एक

निश्चित शब्द हैं जबकि चीनी भाषा में वृद्ध व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक स्थितियों को बताने वाले शब्द हैं जिनके आधार पर पाठक यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि कथन वृद्ध व्यक्ति से संबंधित है।

इसी तरह अंग्रेजी और संस्कृत तथा भारतीय भाषाओं को लें। सूर्य के लिए अंग्रेजी में एक ही शब्द प्रचलित है जबकि संस्कृत-हिन्दी बंगला आदि में अनेक पर्यायवाची शब्द हैं, उनका आम प्रयोग भी होता है। शब्द भण्डार और प्रयोग के इस तरह के भेद को हम अपने और पाश्चात्य समाजों के बीच चिन्तन प्रक्रिया के भेद से जोड़ सकते हैं - एक माने में हमारे पारम्परिक चिन्तन और ज्ञान की एक श्लेषात्मक परम्परा रही है - पर्यायों में हम सोचते हैं जबकि पाश्चात्य परम्परा में निश्चित धारणा तक, एक बिन्दु तक पहुंचने के प्रवृत्ति रही है। यह एक टिप्पणी है, एक दृष्टि बिन्दु इसे हम अपनी सम्पूर्ण चिन्तन प्रक्रिया पर लागू करने की बात नहीं करते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि अलग अलग भाषा बोलने वालों की दुनियां उसके अनुभव अलग अलग होते हैं। यही कारण है कि विभिन्न भाषाओं के शब्दों के बीच जो भेद होते हैं वे अलग-अलग भाषा वालों का ध्यान प्रकृति या पर्यावरण के अलग-अलग पहलुओं की ओर खींचते हैं।

आगे हार्फ ने यह भी माना है कि शब्दों की तुलना में व्याकरण की रूप-रचना अर्थात् शब्दों के अंत में विभक्ति लगातार शब्दों के पारस्परिक सम्बन्ध को बताने का तरीका प्रत्यक्षानुभूति को अधिक प्रभावित करते हैं, क्योंकि इस रूप रचना में अपेक्षाकृत कम परिवर्तन होते हैं। अतः शब्द की रूप रचना अनुभव के कुछ पहलुओं को मुखर करता है कुछ को नहीं। इस माने में भाषा, उसका व्याकरण रूप पर्यवेक्षकों पर अनुभवों के कुछ ही पहलुओं की वस्तु को एक या दो कोनों से पकड़ने के लिए एक तरह से दवाब डालता है। जैसे अंग्रेजी क्रिया का प्रयोग करते हुए पर्यवेक्षक को व्यक्ति और उसके वचन पर भी ध्यान देना अनिवार्य होता है और हिन्दी बोलने वालों के लिए लिंग का भी नियम लागू होता है, जबकि बंगला भाषा में ऐसा नहीं होता है। व्याकरण के इस भेदों का प्रभाव अनुभव-संग्रह-प्रक्रिया पर पड़ता है।

कुल मिलाकर इस विवेचन का निष्कर्ष यह है कि १. भाषा स्वाभाविक एवं प्रत्यक्ष अनुभव तथा प्रत्यानुभूति को प्रभावित करता है । २. यह ऐसे तात्विक विषयों की रचना करती है जो जीवन तथा विश्व दृष्टि को प्रभावित करते हैं । ३. यह सामाजिक प्रत्यक्षानुभूति को भी निर्देशित करती है । ४. कविता की तरह कथा साहित्य में भी प्रयुक्त भाषा वह स्रोत है जिसके विश्लेषण द्वारा हम कथाकार के अनुभवों तथा सरोकारों की प्राथमिकताओं का पता लगा सकते हैं । ५. कथा साहित्य की विधाओं मसलन कहानी तथा उपन्यास के स्वरूप तथा भाषा और संस्कृति के बीच अविच्छिन्न संबंध रहता है । इन्हीं सैद्धान्तिक स्थापनाओं के परिप्रेक्ष्य में हम 'केशर कस्तूरी' तथा 'त्रिशूल' में शिवमूर्ति की भाषा का विवेचन करेंगे ।

(ख) रचना संसार :

शिवमूर्ति का रचना संसार छोटा सा ही है। 'केशर कस्तूरी' कहानी संग्रह १९९१ में राधाकृष्ण प्रकाशन से छप कर आया। इस संग्रह की प्रत्येक कहानी मेरे विचार में हिन्दी कहानी साहित्य के लिए मोतियों के समान है। दूसरी तरफ है उनका महत्वपूर्ण उपन्यास 'त्रिशूल', जो साम्प्रदायिकता की पृष्ठभूमि पर लिखे गये इधर के कुछ उपन्यासों के बीच सर्वाधिक चर्चित हुआ।

'केशर कस्तूरी' संग्रह में कुल मिलाकर छह कहानियां हैं - 'कसाईबाडा' (जो कि नाटक के रूप में भी प्रकाशित हुई) अकाल दंड 'सिरी उपमा जोग', भरनाटयम्', 'तिरिया चरित्तर तथा 'केशर कस्तूरी'। में सभी कहानियां ग्रामीण परिवेश की है पर इन्हें आंचलिक कहना ठीक नहीं होगा। कथागत भिन्नता होते हुए भी इन कहानियों में सबमें एक मूल तथ्य समान है। वह यह कि इन सभी कहानियों में नारी संवेदना के प्रति लेखकीय दृष्टि खुलकर मुखरित हुई है। इसलिए इस संवेदना का विस्तृत अध्ययन तीसरे अध्याय में किया जायेगा।

'त्रिशूल' उपन्यास १९९५ में राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। साम्प्रदायिकता के प्रति विरोध को तीखे तेवरों के साथ प्रस्तुत करता यह उपन्यास अपने कथ्य के साथ कुछ अन्य तेवरं भी लिये हुए है। खासकर हिन्दू समाज के अन्तर्विरोध जातिवाद का नवीन उभार तथा तेजी से बिखरता समाज का धर्मनिरपेक्ष ढांचा। ये सभी बातें

कथा भाषा के साथ-साथ देखी जायेंगी अध्याय चार में। फिलहाल शिवमूर्ति की कथा-भाषा का संक्षिप्त विश्लेषण अपेक्षित है।

(ग) शिवमूर्ति की कथा भाषा का स्वरूप :

शिवमूर्ति ने हिन्दी की विशुद्ध खड़ी बोली में लिखा है : लेखक की ओर से जहां भी वर्णन और विश्लेषण प्रस्तुत हुआ है वे इस बात के प्रमाण है। 'त्रिशूल' को छोड़ दें, तो 'केशर कस्तूरी' की कहानियों के चरित्र भी हिन्दी भाषा ही बोलते हैं लेकिन वह हिन्दी उनके अपने समन्वित ग्रामीण समुदाय की हिन्दी है, वह उनकी स्वाभाविक हिन्दी है जिसके महत्वपूर्ण समाजशास्कीय प्रकार्य हैं, जैसे चरित्रों की सामाजिक स्थिति और तज्जनित भूमिका का पता उनकी हिन्दी बोली से मिलता है जो लेखक की सम्पूर्ण जीवन दृष्टि के सूचक हैं और जो उक्त कहानियों की स्वरूप संरचना के अभिन्न तत्व हैं।

ग्रामीण लोग जिस ढंग से स्टैण्डर्ड हिन्दी अंग्रेजी के शब्दों का उच्चारण करते हैं, वाक्यों की जैसी रचना करते हैं केशर कस्तूरी की कहानियों के चरित्र उसी ढंग की भाषा बोलते हैं, उसका उच्चारण करते हैं इस ढंग का भाषा प्रयोग मानव-शास्त्रीय, समाज-शास्त्रीय दृष्टि से उस जनसमूह द्वारा होता है जिसकी सामाजिक संरचना निम्न हैसियत वाले समूहों के आत्मीय, निजी एवं नजदीकी संबंधों के ताना-बाना से निर्मित होती है। 'कसाईबाड़ा', 'अकालदण्ड', 'भरतनाटयम' तिरियाचरित्तर तथा 'केशर कस्तूरी' कहानियों के गांव की सामाजिक संरचना इसी तरह के आत्मीय और गहरे संबंधों से निर्मित है - जहां एकाध परिवार को छोड़कर सभी निम्न हैसियत के हैं। इन कहानियों की भाषा पढ़कर हमें समान निम्न स्तरीय समूहों - जातियों के ऐसे संसार का ही संकेत मिलता है, जहाँ के लोग और समूह एक दूसरे से अभिन्न तौर पर जुड़े हैं - सहयोग संघर्ष दोनों मामलों में वे एक दूसरे पर निर्भर है और एक दूसरे की क्रिया तथा विचार को प्रभावित करते हैं। इस तरह के सामाजिक समूहों में व्यक्तियों को उनकी बोली, हिन्दी बोलने का उनका ढंग तथा उनकी 'देशी बोली' भी उन्हें अपनी संस्कृति के अनुकूल बनाने में सहायक होती है। वस्तुतः इस माने में इस तरह का भाषा प्रयोग छोटे किन्तु समन्वित समूहों को अपने

सीमित संसार के जीवन मूल्य प्रतिमानों के अनुरूप ढालने का एक यंत्र भी होता है। शिवमूर्ति की भाषा ने इन गहरे प्रकार्यो को परखा है।

व्यक्ति विभिन्न संदर्भो में, विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न समूहों के लोगों के साथ भिन्न-भिन्न भाषा शैली का प्रयोग करता है जो स्वाभाविक हैं, जैसे दोस्त के साथ हम आत्मीय या बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हैं जबकि शिक्षक के साथ दूसरी भाषा यानि स्टैण्डर्ड भाषा का । शिवमूर्ति का महत्व इस बात में हैं कि भाषा के इन विविध रूपों और उनकी विविध समाजशास्त्रीय संभावनाओं की खोज उन्होंने की है। अतः खड़ी हिन्दी के शब्दों के ग्रामीणी प्रयोग उनके उच्चारण अर्थात स्टैण्डर्ड हिन्दी का ग्रामीणी प्रयोग और उच्चारण परिवर्तन - शिवमूर्ति के लेखन में यह सब कुछ भरा पड़ा है जिसके विवेचन से हम एक लक्ष्य तक पहुंच सकते हैं।

भाषा और सामाजिक व्यवस्था के संबंध का एक आयाम है - उच्चारण परिवर्तन ! शब्दों के उच्चारण या उनके बोलने के स्वर में परिवर्तन वैयक्तिक आदत के सूचक मात्र नहीं होते हैं । ये वक्ता श्रोता की अपेक्षा सामाजिक स्थितियों के द्योतक भी होते हैं । अगर वक्ता श्रोता की समान सामाजिक स्थिति होती है तो दोनों के उच्चारण एक जैसे होते हैं । इसके विपरीत उच्चारण परिवर्तन द्वारा हमें दोनों के बीच सामाजिक हैसियत एवं प्रतिष्ठा के भेद का संकेत मिलता है, जैसे उच्च हैसियत वाला व्यक्ति शब्दों का व्याकरण सम्मत उच्चारण करेगा, जबकि उसकी तुलना में वक्ता या श्रोता अगर निम्न हैसियत का है तो उसका उच्चारण स्थानीय या आंचलिक लहजे में होगा । लेकिन हैसियत भेद के बावजूद जब वक्ता अपने श्रोताओं के बीच स्वीकृत या प्रिय होना चाहता है तो वह श्रोता को ध्यान में रखकर शब्दों का प्रयोग तथा उच्चारण करेगा । शहरी लोगों द्वारा ग्रामीण लोक बोली का उपयोग भी इसी तथ्य को स्पष्ट करता है । ऐसा इसलिए होता है कि श्रोता को किसी प्रकार की दूरी या हीनता का बोध नहीं हो । साथ ही जानबूझकर वक्ता द्वारा उच्चारण या लहजे के श्रोता के अनुकूल बनाने के पीछे यह उद्देश्य रहता है कि भावना और विचार के संप्रेषण के लिए समान आधार तैयार हो ! लेकिन जब वक्ता श्रोता के उच्चारण पृथक ही रहते हैं, जैसे वक्ता का उच्चारण स्टैन्डर्ड श्रोता का आंचलिक या श्रोता का स्टैन्डर्ड वक्ता

का आंचलिक, ऐसी स्थिति में दोनों की हैसियतों की प्रथकता का बोध होता है । इस तरह यह स्पष्ट है कि कथा साहित्य में चरित्रों की उच्चारण प्रणाली द्वारा हमें सूक्ष्म सामाजिक संकेत मिलते हैं । हर बड़ा कथाकार भाषा के इस पहलू का भी उपयोग करता है जैसा कि शिवमूर्ति ने किया है ।

अब हम शिवमूर्ति के उपन्यास तथा कहानियों में भाषा, यथार्थता, भाव, विचार, एवं मूल्य व्यवस्था, के पारस्परिक संबंधों की चर्चा करना चाहेंगे । शिवमूर्ति ने एक खास अंचल की प्रकृति एवं चरित्रों का विवरण तत्सम प्रधान प्रांजल हिन्दी में प्रस्तुत किया है । प्रकृति के वर्णनों से पता चलता है कि उस इलाके की प्रकृति एवं धरती से लेखक बहुत गहरे ढंग से जुड़ा हुआ है, उनके प्रति शिवमूर्ति के मन में अटूट श्रद्धा और अपनापन है । 'केशर कस्तूरी' की कहानियों में तथा 'त्रिशूल' में भी जहां भी ऐसे वर्णन आए हैं उनसे स्पष्ट होता है कि उस इलाके की प्रकृति और धरती शोषित और पीड़ित है । ! प्राकृतिक विभीषिकाओं, जैसे बाढ़ बीमारी इनके साथ व्यवस्था द्वारा मानवीय शोषण इन दोनों के कारण धरती पीड़ित है बन्ध्या है ! लेखक ने इस यथार्थता का अनुभव किया ! इस धरती के प्रति उसकी गहरी प्रतिबद्धता है । इसके रूप रस गंध स्पर्श सभी से लेखक रचा बसा है । इस तरह लेखक ने अपनी धरती के प्रति इस विशेष उदात्त भावना और प्रतिबद्धता को संप्रेषित करने के लिए सरल हिन्दी का प्रयोग किया है क्योंकि इसी शैली में यह संभव था । लेकिन शिवमूर्ति के लिए भाषा की संप्रेषण सीमा यहीं खत्म हो जाती है क्योंकि वे पाठकों को इस धरती के जीवन्त संसार में ले जाना चाहते हैं, वे अपनी परानुभूति क्षमता तथा भाषा प्रयोग द्वारा यह उद्देश्य पूरा करते हैं । अतः पाठकों को गांव के रूप रस गंध स्पर्श और ध्वनि का बोध कराने के लिए शिवमूर्ति ने गांव में बोली जाने वाली खड़ी हिन्दी को अपना माध्यम बनाया है ।

इस इलाके के गांव के चरित्र जब खड़ी हिन्दी का प्रयोग करते हैं तब शब्दों के उच्चारण बदल जाते हैं, लहजा और व्याकरण भी । इस हिन्दी द्वारा पाठक उस ग्रामीण संसार के इस रस दर्शन को ग्रहण करता है उसका साधारणीकरण होता है

इस भाषा के प्रयोग द्वारा हास्य व्यंग्य की भी सृष्टि विभिन्न स्थितियों में होती है .। खास तौर पर तब जब कोई अनपढ़ ग्रामीण चरित्र सम्भ्रान्त व्यक्ति की हिन्दी की तरह बोलना चाहता है तो हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न होती है ! कसाई बाड़ा कहानी का लीडर 'कोरट' 'करेक्टर' शब्दों का इस तरह प्रयोग कर पिछड़े व दबे ग्रामीणों के बीच अपने महत्व को रेखांकित करना चाहता है, लेकिन इससे हास्य-व्यंग्य भी उत्पन्न होता है ।

'केशर कस्तूरी' की कहानियों के सभी चरित्रों की ग्रामीण हिन्दी पर गौर करने पर प्रत्येक पात्र की सामाजिक सांस्कृतिक हैसियत का भी स्पष्ट पता चल जाता है । इस प्रसंग में चरित्रों द्वारा उच्चरित शब्दों पर गौर करें । शिवमूर्ति ने शब्दों के हिज्जे अपने पात्रों के उच्चारण के अनुकूल लिखे हैं - जो स्टैन्डर्ड हिज्जे से भिन्न हैं, जैसे कोर्ट की जगह 'कोरट' 'लाइट' की जगह 'लैट' टाइम की जगह 'टैम' आदि । अपने इन भाषिक प्रयोगों में शिवमूर्ति रेणु के निकट है । 'मैला आंचल' में ऐसे भाषिक प्रयोगों की भरमार है ।

वास्तव में इस तरह के शब्द प्रयोग के कई अर्थ निकलते हैं । एक ग्रामीण चरित्रों की वास्तविक शैक्षणिक स्थिति के अतिरिक्त ग्रामीण और नगरीय संस्कृति के बीच भेद और दूरी का पता चलता है । दो, ग्रामीण उच्चारण के अनुकूल शब्दों के हिज्जे लिखकर लेखक ने - व्याकरणों के नियमों को तोड़ा है लेकिन उससे एक बड़ा कलात्मक उद्देश्य पूरा हुआ है वह है ग्रामीण जगत और संभ्रान्त जगत की दृष्टि, इन दोनों के दुराव को खत्म करने की चेष्टा और इस तरह पाठकों को पारंपरिक ग्रामीण संस्कृति का रस ग्रहण कराना । तीसरा, शिवमूर्ति अपने भाषा प्रयोग द्वारा पाठकों को उस संसार में ले जाते हैं जो प्रधानतया मौखिक है, जो लिखित वाणी से बहुत हद तक असंप्रक्त है, जहां परंपरा के भाव विचार-अनुभूति मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित हो रही है । इस जगत में ज्ञान और बुद्धिमानों की बात भी मौखिक रूप से फैलती है । पाठक शुरू में इन शब्दों से जरा परेशानी महसूस कर सकते हैं, उन्हें कुछ अटपटा सा लगता हो लेकिन एक बार पाठक जब शिवमूर्ति की कहानियों के मौखिक जगत में प्रवेश कर जाते हैं तब वे उस जगत के स्वर, ध्वनि, रूप और गद्य

TH - 8253

में लीन हो जाते हैं, उनका पूरा तादात्म्य स्थापित होता है - यह सब शिवमूर्ति ने अपने भाषा प्रयोग द्वारा किया है जो कविता के प्रभाव से भी बढ़कर अधिक तीव्र और गहरा है।

सामान्य रूप से अधिकांश लोग खास तौर पर ग्रामीण चरित्र जो स्वाभाविक हिन्दी बोलते हैं, वह किताबी हिन्दी से भिन्न होती है - इस हिन्दी में व्याकरण के इन क्लिष्ट नियमों का प्रायः पालन नहीं होता है, जैसे 'ने' चिन्ह, लिंग के आधार पर क्रिया पद से भिन्नता के नियम का बंधन नहीं रहता है। इसी तरह शब्दों के हिज्जे, उच्चारण, व्याक़रण सम्मत वाक्य विन्यास प्रथा शब्दों का क्रम भी व्याकरणानुसार नहीं होता। सारांश यह है कि उनकी स्वाभाविक हिन्दी किताबी या व्याकरण सम्मत भाषा से मुक्त होती है। यही उनकी स्वाभाविक भाषा है - इसी हिन्दी को शिवमूर्ति ने सरल हिन्दी भाषा माना है और सर्वत्र उनके चरित्र ऐसा सरल हिन्दी भाषा माना है और सर्वत्र उनके चरित्र ऐसा सरल भाषा का प्रयोग करते हैं। शिवमूर्ति ने ऐसी भाषा को सीधा और सशक्त संप्रेषण का माध्यम बनाया है। इस भाषा का प्रयोग कर उन्होंने गांव के सामान्य लोगों के व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित किया है, उनकी पहचान बनायी है।

मुहावरों-लोकोक्तियों का प्रयोग :

Jawaharlal Nehru University Library

शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में इस प्रसंग में मुहावरों, कहावतों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग किया है, उनके विभिन्न चरित्र अपने कथनों के आगे पीछे कहावत लोकोक्ति जोड़ते हैं ताकि उनके कथनों की प्रामाणिकता सिद्ध हो सके। इन उद्धरणों का एक दूसरा उद्देश्य यह भी होता है - आम लोग अपने निजी अनुभव के आधार पर जो निष्कर्ष निकालते हैं, उन्हें सार्वजनिक सत्य के रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं, ग्रामीण लोगों में यह प्रवृत्ति खासतौर पर पायी जाती है। उनकी बातचीत और उनके बीच विचारों के आदान-प्रदान के क्रम में इनका उपयोग अपने समुदाय के अर्जित ज्ञान वाक्य के रूप में होता है। उनके पीछे मान्यता यह होती है कि सैकड़ों वर्षो के अनुभवों पर ये लोकोक्तियां, मुहावरे, कहावतें आधारित हैं जो ग्रामीण जगत की संप्रेषण शैली की एक विशिष्टता है।

DISS

0,152,3,N509:9 (P)
152N9

उपर्युक्त प्रयोग के संदर्भ में शिवमूर्ति जहाँ रेणु से अभिप्रेरित है तो वही श्री लाल शुक्ल की शैली के भी काफी नजदीक हैं। शुक्ल जी ने 'राग दरबारी' में स्थितियों के अनुकूल मुहावरों आदि का प्रयोग किया है। ठीक यही बात शिवमूर्ति के लेखन में भी है। कुछ ऐसे ही प्रयोगों के उदाहरण हैं 'कसाईबाड़ा' में लीडर जी का कथन' जेकर काम उन्हीं से होय गदहा कहे कुकुर से रोय।"१ अथवा 'तिरिया चरित्तर' कहानी में पुजारी के मुख से निकली यह लोकोक्ति - तिरिया चरित्तम पुरूखस्य भाग्यम।"

कुल मिलाकर शिवमूर्ति ने ग्रामीण परिवेश की सहज भाषा के जीवन्त रूप को प्रस्तुत किया है ऐसी स्टीक भाषा शैली प्रस्तुत की है जो आम लोगों के दिल दिमाग और उनकी ध्वनि को प्रस्तुत करती है। जो संप्रेषण की दृष्टि से भी सशक्त माध्यम सिद्ध हुई है। इस भाषा शैली द्वारा शिवमूर्ति ने गांव शहर की दूरी का आभास तो कराया ही है साथ हीइन दूरियों को कम करने का, मिटाने का भी संकेत दिया है जब वे अंचल की बोली मुहावरों का प्रयोग खड़ी हिन्दी के दायरे में ही प्रस्तुत करते हैं। स्पष्ट है कि शिवमूर्ति के इस भाषा प्रयोग के मूल में एक बड़ा उद्देश्य निहित है- वह है ग्रामीण नगरीय चेतनाओं के बीच सेतु क्षेत्र का निर्माण, ग्रामीण जगत के नव निर्माण की धुरी की तलाश जो शिवमूर्ति के जीवन और कार्य के उद्देश्य रहे हैं। इसी प्रेरणावश शिवमूर्ति ने कहानी की एक नवीन शैली एवं माध्यम का अविष्कार किया है जो हिन्दी कहानी जगत के लिए अनोखा है। किसी भी अन्य समकालीन कहानीकार ने इस तरह के सहज एवं अर्धगर्भ माध्यम का उपयोग नहीं किया है। इसीलिए हैरानी होती है यह देखकर कि जब स्वयं जनवादियों की कहानियों से 'जन' दिनों दिन दूर होते जा रहे हैं, बिना घोषित जनवादी हुए शिवमूर्ति की कहानियां जन के इनके करीब कैसे हैं ?

ग्राम गीत और गाथा :

शिवमूर्ति की कहानियों में ग्रामीण संगीत, लोक धुन एवं गाथा का अनेक प्रसंगों में उल्लेख किया गया है जैसे 'सीता का दर्द' 'सौतिया डांह' आदि। ये दबे पिछड़े ग्रामीण लोगों की जीवन संस्कृति के नमूने हैं जो ग्रामीण सांस्कृतिक विरासत के नमूने हैं। इन गीतों गाथाओं द्वारा शिवमूर्ति ने विविध आयामों को प्रस्तुत कर एक समन्वित

संसार का सृजन किया है - उन्होंने पारम्परिक लोक साहित्य के भाव तथा संवेदना को समकालीन कहानी विधा से समन्वित किया है।

इन बातों के अतिरिक्त इन गीतों गाथाओं के माध्यम से शिवमूर्ति ने स्त्री संवेदना को उभारने की महत्वपूर्ण कोशिश की है। ग्रामीण नारी के मन का दर्द इन गीतों में फूट पड़ा है - "मत रोते भाई, मत रोवे बपई / मत रोवे भइया, हजारी जी। अपने करमवा मा जरनि लिखायी लाए। का करि है बाप महतारी जी।"[२]

इस प्रकार शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में ग्रामीणजीवन के अनुभव, उसके मूल्य प्रतिमान, वस्तुतः समग्र संस्कृति उसकी लोकरीति, रूढ़ि कथा कविता लोकोक्ति आदि को उस भाषा में प्रस्तुत किया है कि पाठक उस दुनियां में पहुंच जाय, उस ग्रामीण समुदाय का सहभागी अनुभव करने लगे, उससे एकात्म हो जाये और उससे जुड़ी व्यापक भारतीय परम्परा और संस्कृति का उसे आनुभाविक बोध हो जाय। प्रेमचन्द्र, रेणु, शिवप्रसाद सिंह तथा श्री लाल शुक्ल की इसी परम्परा की अगली महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में शिवमूर्ति आते हैं।

निष्कर्षतः शिवमूर्ति ने अपने मौलिक भाषा द्वारा जिस नये फार्म का आविष्कार किया है वह हिन्दी कथा क्षेत्र खासकर कहानी के क्षेत्र में भाषागत नवाचार है। शिवमूर्ति के साथ ही हिन्दी कहानी में पुनः कथारस की वापसी होती है। और हां उपर्युक्त नवाचार उनकी मूल विषयवस्तु अर्थात् सांस्कृतिक पारम्परिक और आधुनिक ग्रामीण और शहरी तथा उसकी सभ्यता और सामाजिक परिवर्तन से सम्बद्ध प्रक्रिया की प्रस्तुति के लिए उपयुक्त सिद्ध हुआ है।

१. मैनेजर पाण्डेय : साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृ. २४४.

२. केशर कस्तूरी, पृ. १६३.

अध्याय -३

नारी संवेदना और शिवमूर्ति की कथाभाषा

नारी संवेदना और शिवमूर्ति की कथा-भाषा

शिवमूर्ति के कथा साहित्य खासकर कहानियों के केन्द्र में ग्रामीण नारी है । इसकी संवेदना को अभिव्यक्त करने का उनका तरीका समकालीन कहानीकारों में से सबसे अलग है, अद्वितीय है । अरूण प्रकाश, हरि भटनागर, मैत्रेयी पुष्पा, उदयप्रकाश आदि कहानीकारों ने ग्रामीण नारी को केन्द्र में तो रखा जरूर है पर न तो भाषा के आधार पर और न ही अनुभव के आधार पर वे उसके साथ सही तरीके से न्याय कर पाए हैं ।

सच कहें तो, विशेषकर समकालीन हिन्दी कहानी (विशेषकर नवें दशक की) सर्जनात्मकता का सबसे खोखला अंश वहां पर मौजूद है जहां अनुभव और भाषा के बीच का रिश्ता खंडित होता दिखाई देता है । भाषा और संवेदना को जोड़ने वाला जो तार था उसमें आज जैसे विचार का करन्ट ही प्रवाहित नहीं होता । हालांकि इस दौरान कुछ अच्छी कहानियॉ आई जरूर हैं पर अधिकांश ऐसी लिखी जाती रहीं जिनका अनुभव की भाषा ने साथ छोड़ दिया है । संवेदना, फिजूलखर्ची, बातूनीपन, सरलीकरण, घटिया सपाट बयानी और तनावहीन भाषा में फिसलती मिलती है । परस्पर विरोधी विचारों की घुसपैठ ने न केवल इन कहानियों की संवेदना को पतला और बेस्वाद बनाया है, बल्कि गहरे स्तर पर इन्हें विचारों के मछली बाजार में खड़ा कर दिया है । भाषा की प्रयोग विधि इस कदर अनियंत्रित है कि किसी भी 'अर्थ' को विश्वास में बदल पाना कठिन जान पड़ता है ।

लेकिन इसी दौरान लिखी गई शिवमूर्ति की कहानियां एक विश्वास पैदा कर जाती हैं । नारी पीड़ा के अनुभव के प्रकटीकरण के दौरान उनकी कथाभाषा तदनुरूप सरल तथा जटिल एक साथ है । साथ ही संवेदना को अभिव्यक्त करते समय उनकी भाषा की प्रयोगविधि इस कदर नियंत्रित है कि हर 'अर्थ' विश्वास में बदल जाता है ।

नारी संवेदना को साथ लेकर चलने वाली शिवमूर्ति की कुछ कहानियां बेहद महत्वपूर्ण हैं । वैसे केशर कस्तूरी संग्रह की तमाम कहानियों के केन्द्र में ग्रामीण नारी ही है । 'कसाईबाड़ा' में जहां 'शनिचरी' की वेदना है तो वहीं अकालदंड में सुरजी का शोषण, 'सिरी उपमा जोग' में एक ग्रामीण पत्नी की करूण कहानी है तो 'तिरियाचरित्तर' में विमली का जीवंत स्त्रीत्व । इन सबसे अलग 'केशर कस्तूरी' में है केशर के करम की जरिन जो निरन्तर संघर्ष के बाद भी दूर नहीं होती । कुल मिलाकर ये कहानियां ग्रामीण नारी में सुगबुगाती मुक्ति चेतना को रेखांकित करती हैं ।

शिवमूर्ति के पूर्व प्रेमचन्द्र तथा रेणु ने ग्रामीण नारी में सुगवुगाती मुक्ति चेतना को रेखांकित किया है । इस मुक्ति चेतना के अन्तर्गत सामंती और रूढ़िवादी मूल्यों को निरस्त करते हुए सांक्रमण 'श्रम' 'सम्मान' आदि मूल्यों की दिशा में हुआ है । इसे 'उदग्र सामाजिक गतिशीलता' का प्रमाण माना जा सकता है । पूरनचन्द्र जोशी के अनुसार ''नए सांस्कृतिक मूल्यों को, जिनमें नारी के प्रति आदर एवं नारी मुक्ति स्वयं सर्वश्रेष्ठ मूल्य है, तब तक नहीं बढ़ाया जा सकता जब तक परजीविता को प्रोत्साहन देने वाली आर्थिक व्यवस्था के स्थान पर श्रम, उद्यम, सहयोग और सहभागिता पर आधारित आर्थिक व्यवस्था की स्थापना नहीं होती ।''[9] लगभग इसी निष्कर्ष पर प्रेमचन्द्र रेणु के साथ-साथ उनकी परम्परा के अन्य कथाकार भी पहुँचे हैं । वे मानते हैं कि हर तरह की मूल्यगत असंगति मौजूदा व्यवस्था के अन्तर्विरोधों की देन है । इस व्यवस्था में नारी की नियति यही है कि वह भेड़ियों का आहार बनती रहे । वे बनती भी हैं, लेकिन अब इस शोषण को वे भाग्य या ईश्वर की देन मानकर स्वीकार नहीं करतीं । तीव्र आक्रोश का भाव उनमें खौल रहा है । लेकिन वह विद्रो हभाव अभी सीमित है, ग्रामीण नारियां विशेषतः दलित नारियां अभी रूढ़ियों एवं गलत मूल्यों की गुंजलक में छटपटा रही हैं और नकारात्मक मूल्यों के प्रभाव को व्यंजित करती हैं । लेकिन फिर भी शिवमूर्ति के पूर्व कथा साहित्य में ग्रामीण नारी इस रूप में आई है कि अब उसे वर्जनाओं में बांधकर नहीं रखा जा सकता क्योंकि दासता के ऊपर चढ़ी दार्शनिक सामाजिक कलई खुल चुकी है ।

प्रेमचंद और रेणु की जिस परम्परा में ग्रामीण नारी की मुक्ति चेतना का रेखांकन है उसी परम्परा में शिवमूर्ति इस चेतना को और गहरा करते हैं । यह काम कथ्य एवं भाषा दोनों स्तरों पर वे करते हैं । इसके साथ ही साथ उनकी रचनाओं में उक्त दोनों ही स्तरों के बीच एक अद्‌भुत एकात्मकता है । उनकी कहानियों की नारी, भारत के ग्रामीण समुदाय की दलित नारी है । शोषण रूपी पहाड़ सबसे अधिक उसी पर भारी है । समानता, साक्षरता, स्वतंत्रता, इत्यादि शब्द तो शहरी साक्षर स्त्रियों के लिए जाने पहचाने हैं, पर ग्रामीण स्त्री के लिए तो जीने का एक ही दर्शन है - आरोपित आचार संहिताएं । यह आचार संहिता भी उस ग्रामीण भारतीय सामाजिक व्यवस्था द्वारा बनायी गयी है, जो पहले से ही अतार्किक और शोषणपरक है । ऐसे में हम ग्रामीण नारी की संवेदना का कटु अनुभव और भी आसानी से कर सकते हैं । शिवमूर्ति ने इसी संवेदना को अपनी कहानियों में स्थान दिया है- एक सशक्त कथा भाषा में पिरोकर ।

सूखा, अकाल, बाढ़, बीमारी ये सब भारतीय गांवों के स्थायी रोग हैं । गांव में बड़े अकाल से जूझती एक ग्रामीण स्त्री सुरजी किस प्रकार उस दौरान कई अन्य अकालों से भी संघर्ष करती है इसी को दर्शाती है कहानी 'अकालदंड' । प्रेमचन्द्र ने 'गोदान' में ग्रामीण लोगों के चरित्र के एक खास पहलू की ओर इशारा किया था, वह है - मरजाद । मरजाद अर्थात सम्मान के साथ जीने की दुर्दम्य इच्छा । एक ऐसा जीवन जिसमें कुछ और भले ही न हो पर अपनी नितान्त निजी हैसियत का बोध होता रहे । इस सन्दर्भ में एक ग्रामीण नारी आज भी इस मरजाद को अपने 'शील' या 'लाज' से जोड़कर देखती है तथा उसकी रक्षा में अपने प्राण भी दे सकती है । इस मरजाद की रक्षा में प्रथम तो उसकी भाषा का रूप अनुनय विनय का होता है पर अन्त में या तो वह प्राण लेने का प्रयास करती है या देने का । 'सुरजी' में मरजाद की रक्षा हेतु यही प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं । 'अकालदंड' कहानी के इस प्रसंग में हम देखते हैं कि शिवमूर्ति की भाषा न केवल 'स्वाभाविक' है अपितु 'यथार्थ के प्रति संवेदनशील' भी है-

'' टटिया की खरखराहट से सुरजी की आंख खुल जाती है । वह घबराकर पूछती है-''को है ?

'हम हैं सूरजकल्ली जी ! जरा आस्ते बोलो ।'

.....

वे झिलंगा खतिया पर बैठने का प्रयास करते हुए मिठी झिड़की देते हैं ''बैठ''

''काहे आपकी मती भरिष्ठ भई है सिकरेटरी बाबू ।'' आवाज दूसरे कोने से आती है'' हम गरीबन का भी दुनिया मा इज्जत आबरू के साथ परा रहे देव । हाथ जोड़ित है । चले जाव ।''

''तेरी अकिल पर जहालत का जाला पड़ा है पागल । मैं यह जाला साफ कर देना चाहता हूँ । पारसमणि है तू । जिसे छूकर लोहा भी सोना बन जाता है । अपने गुन से वाकिफ नहीं है तू । मैं तेरा उद्धार करूँगा । ''

''उद्धार जाकर अपनी माई बहिन का कर दाढ़ी जार । उन्हीं को पढ़ा अपना यह परेम सागर ।''

सिकरेटरी की काली छाया आगे बढ़ती देख गुर्राती है सूरजा'' ख-आन---खबरदार जो आगे बढ़ा ।'' वह दूसरे कोने की ओर पिछड़ती जा रही है

'' मुँह औसि देब दहिजार के पूत ।''

.....

.....

फिर गुर्राती है सुरजी''भलमानसी चाहौ तो अब चुपै भाग जाव । नही त अब ही गोहार लगाय देव ता तोहार भददग उतरि जाए ।''

सिकरेटरी बाबू पस्त ! परास्त !!

टटिया लगाकर सुरजी झिलंगी खटिया पर गिरती है और फूट-फूटकर रोने लगती है ।''[२]

इस कहानी के अंत में अपनी मरजाद की रक्षा करने के प्रयास में सुरजी सिकरेटरी बाबू का लिंग काटकर भाग जाती है । खैर मरजाद के इस आधार पर' शिवमूर्ति जिस प्रकार ग्रामीण स्त्री की संवेदना को अपनी कथा भाषा में व्यक्त करते हैं वह प्रशंसनीय है ।

यही ग्रामीण स्त्री एक पत्नी के रूप में आती है 'सिरी उपमा जोग' कहानी में । इस कहानी में अपने पति के हिस्से के श्रम को अपने ऊपर लेकर उसे अध्ययन की ओर प्रेरित करती है । इस प्रेरणा से वह बहुत बड़ा अधिकारी बन जाता है पर अधिकारी बनने के बाद वह उसे छोड़ देता है, शहर में दूसरा विवाह कर लेता है । कुल मिलाकर इस कहानी में ग्रामीण पत्नी के तीन रूप एक साथ घुले - मिले हैं - सेवा भावना, प्रेम और त्याग ।

पति सेवा पति परमेश्वर की अवधारणा का सार है । ग्रामीण स्त्री इस अतार्किक अवधारणा के अभिषाप को अब भी झेल रही है । वह इसे सम्मान की दृष्टि से देखती है । पति की सेवा उसकी पहली प्राथमिकता होती है । इसे वह अपने सुख और कल्याण का हेतु समझती है । स्त्री के अधिकार को न मानने वाली इस अतार्किक अवधारणा को शिवमूर्ति अपनी भाषा में इस तरह व्यक्त करते हैं -

''रोज सबेरे वह ताजी रोटी बनाकर उन्हें खिला देती और खुद बासी खाना खाकर लड़की को लेकर खेत पर चली जाती तै । एक बकरी लायी थी वह अपने मायके से, जिससे सबेरे उन्हें थोड़ा दूध और चाय मिल सके । रात को सोते समय पूंछती ''अभी कितनी किताब और पढ़ना बाकी है साहबी वाली नौकरी पाने के लिए।''

वे उसके प्रश्न पर मुस्कुरा देते ''कुछ कहा नहीं जा सकता । सारी किताब पढ़ लेने के बाद भी जरूरी नहीं कि साहब बन ही जांय ।''

''ऐसा मन सोचा करिए' वह कहती 'मेहनत करेंगे तो भगवान उसका फल जरूर देंगे।''[३]

इस पत्नी का एक दूसरा रूप होता है - प्रेम का । इस प्रेम में एक अनोखा समर्पण तो होता ही है साथ ही एक विचित्र स्वार्थ भी होता है । थोड़ा सा शक और अधिक सी निश्चिन्तता इस प्रेम का स्थायी भाव है ।

''तीन चार महीने बाद फिर गांव आये तो पत्नी ने टोंका था'' इस बार काफी दुबले हो गये हैं । लगता है काफी काम रहता है । बहुत गुमसुम रहने लगे हैं, तथा सोचते रहते हैं ।?''

वे टाल गये थे । रात में उनसे कहा ''इस बार में भी चलूंगी साथ में । अकेले तो आपकी देह गल जायेगी ।''

''तुम तो फालतू में चिन्ता करती हैं'' लेकिन वह कुछ और सुनना चाहती थी, बोली थी'' फिर आप शादी क्यों नहीं कर लेते वहां किसी पढ़ी लिखी लड़की से । मैं तो शहर में आपके साथ रहने लायक भी नहीं हूँ ।''

''कौन सिखाता है तुम्हें इतनी बातें ?''

''सिखाऐगा कौन ? यह तो सनातन से होता आया है । मैं तो आपकी सीता हूँ । जब तक बनवास में रहना पड़ा साथ रही लेकिन राजपाट मिल जाने के बाद तो सोने की सीता ही साथ में सोहेगी । लालू के बाबू, सीता को तो आगे भी बनवास ही लिखा रहता है ।''

..... फिर बड़े करूण स्वर में गाती रही थी । - ''सौतनिया संगरास रचावत, मॉ संग रास भुलान, यह बतिया कोऊ कहत बटोही, त लगत करे जवा में बान, सॅवरिया भूले हमें ....।''[४]

इस ग्रामीण पत्नी के चरित्र का एक सशक्त रूप है- त्याग । त्याग अर्थात एक ऐसी भावना जिसमें कुछ पाने की अभिलाषा नहीं होती, सिर्फ देने की होती है । ग्रामीण स्त्री में यह भावना कुछ ज्यादा ही होती हैं क्योंकि अधिकार आदि धारणाओं से वह अब तक अनभिज्ञ है जब कि त्याग जैसे मूल्य सनातन से उसके मस्तिष्क में थोपे जा रहे हैं । शिवमूर्ति ने तथ्य में फेरबदल नहीं किया है पर भाषा की 'संवेदनशीलता' ही सारे रहस्य खोलकर द्रवित कर देती है ।

चिट्ठी खोलकर वे पढ़ना शुरू करते हैं- ''सरव सिरी उपमा - जोग, खत लिखा लालू की माई की तरफ से, लालू के बप्पा के पांव छूना पहुंचे .....

''आगे समाचार मालूम हो कि हम लोग यहां पर राजी खुशी से हैं और आपकी राजी ख़ुशी भगवान से नेक मनाया करते हैं । आगे लालू के बरपा को मालूम हो कि हम अपनी याद दिलाकर आपको दुखी नहीं करना चाहते हैं .....।''[५]

निस्संदेह त्याग की मूर्ति एक ग्रामीण पत्नी की भाषा का यह सबसे सूक्ष्मतम तथा कोमलतम रूप है । इस संदर्भ में भाषा का संवेदना से और संवेदना का यथार्थ से घनिष्टतम संबंध भी उल्लेखनीय है ।

लेकिन उपर विश्लेषित बातें ग्रामीण नारी की संवेदना का एक हिस्सा भर है। एक पत्नी के रूप में उसकी भूमिका पति तक सीमित नहीं । ग्रामीण समाज में तो वह एक परिवार व्यवस्था की धुरी है , और इस संदर्भ में उसके कर्तव्यों की कोई सीमा नहीं । परिवार में सबसे कम अधिकार युक्त होते हुए भी सबसे अधिक कर्तव्य उसी के हिस्से में आते हैं । पर परिवार की इस असमता मूलक व्यवस्था के प्रति उसके मन में मोह भी होता है । वह बिना कुछ चाहे अपने कर्तव्य करती रहती है, एक 'अदभुत मगन भाव' से जो आश्चर्य चकित करता है । केशर कस्तूरी कहानी में केशर के इस चरित्र को अभिव्यक्त करती भाषा को देखें -

''केशर के बप्पा ने खाते खाते बात चलाई'' हम लोग तुम्हारी विदायी कराने आयें हैं बेटी। नातिन की मौत सुनने के बाद तुम्हारी मां अक्सर रोती रहती हैं ।''

मेरा चलना अब कैसे हो पायेगा बप्पा ? बूढ़ा बैल, बूढ़ी सास । इन्हें दाना पानी कौन देगा?

''दुख तो काटने से कटेगा बरपा'' केशर चूल्हे की आग तेज करते हुए बोली- भागने से तो और पिछुआएगा ।''[६]

यहां हम शिवमूर्ति की कथा भाषा की एक खास विशेषता को देखते हैं । हम देखतें हैं कि नारी संवेदना को अभिव्यक्त करते हुए वे व्यर्थ के वैचारिक उलझनों में

नहीं पड़ते निस्सन्देह ग्रामीण नारी के वर्तमान यथार्थ के पीछे एक मजबूत सत्ता तंत्र की भूमिका है । इस तंत्र में पुरूषवादी वर्चस्व के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था का असमतामूलक चरित्र भी है । पर शिवमूर्ति विचार के रूप में इसका अन्यथा आरोप नहीं करते । इनका तरीका दूसरा है । दर्द एवं व्यथा का अनुभव उनकी भाषा मार्मिक रूप से करवाती है । पाठक इन स्थितियों में द्रवित होता है सहानुभूति उपजती है उसके मन में । केशर के व्यथा का निदर्शन वे अपनी ऐसी ही 'संवेदनशील भाषा' के साथ करते हैं । जहां स्थितियों के प्रति वैचारिक दृष्टि लेखक की होती है । भाषा प्रयोग भी उसी का होता है । पर यह भाषा पाठक के मन में व्यक्त यथार्थ और पात्र की संवेदना को साथ लेकर पहुंचती है । अपनी इस तकनीक के चरम स्तर पर वे ग्राम गीतों तथा गाथाओं का सहरा लेते हैं। जो पाठक के मन में ज्यादा प्रभाव डालते हैं ।

..... "सीता जी को गर्भावस्था में पुनः वनवास हो गया है । लक्ष्मण धोखे से उन्हें जंगल में छोड़ आये हैं । राजा जनक को खबर मिलती है तो अधीर हो जाते हैं । तुरंत रथ लेकर मंत्री जी को भेजते हैं - जाकर जनकपुर लिवा लाइए । कहना तुम्हारे मां बाप का रोते-रोते बुरा हाल है । लेकिन सीताजी मंत्री जी को समझा बुझा कर वापस भेज देती हैं ।

मत रोवे माई, मत रोवे बपई
मत रोवें भइया, हजारी जी.ई.ई.
अपना करमवा मां जरनि लिखाई लाए,
का करि हैं बाप, महतारी जी. ई.ई ।।"[७]

नारी संवेदना को अभिव्यक्त करते हुए शिवमूर्ति की कथा-भाषा का सर्वोत्कृष्ट रूप हमें उनकी कहानी 'तिरियाचरित्तर' में मिलता है । यह कहानी नव्वे दशक की महत्वपूर्ण कहानियों में से एक है । यह कहानी ग्रामीण नारी के रागपूर्ण कटु-यथार्थ को साथ लेकर चलती है । इसकी पात्र विमली केवल स्त्री होने के कारण । बचपन से लेकर युवावस्था और उसके बाद तक किन संघर्षो से जूझती है उसी को यह कहानी अभिव्यक्त करती है । इस कहानी में शिवमूर्ति की कथा भाषा एक बेहतर तकनीक का प्रयोग करने की ओर अग्रसर है ।

वास्तव में एक अच्छा कथाकार एन्द्रिय या संवेदी यथार्थता के सार को पकड़ने एवं जीवन की जटिलताओं के विभन्न रंगों की तह में जाने का प्रयास करता है । वह उस यथार्थता को स्वीकार नहीं करता । जिसमें केवल बाहरी घटनाओं और स्थितियों की यथावत फेरहिस्त रहती हैं । सच कहें तो चाहे जो भी कला हो वह वास्तुकला की सुनम्यता, चित्रकला के रंग और संगीत की जादुई व्यंजना या संकेतात्कता तक पहुंचने का श्रम साध्य प्रयास है । उपयुक्त भाषा की शक्ति द्वारा लेखक उसे संभव बनाता है । इसी प्रकार एक लेखक या कथाकार लिखित शब्द शक्ति का ऐसा उपयोग करता है कि पाठक खुद ध्वनि सुने, अनुभव करे तथा प्रत्येक क्षण को देखें, उसकी भव्यता और उसमें निहित नैतिकता की प्रत्यक्ष देखें और परखें ।

'तिरिया चरित्रर' कहानी में शिवमूर्ति की भाषा एक ऐसे ही यथार्थ संसार का चित्र तैयार करती है । वहां एक ग्रामीण नारी है, उसका संघर्ष है तथा सामने हैं असमतामूलक तथा शोषण परक ग्रामीण व्यवस्था । सब कुछ चित्रवत है तथा जो भाषा के महीन रेशों से सुनिर्मित है । शिवमूर्ति ने इस कहानी में अवधी बोली का वेधड़क प्रयोग किया है पर खड़ी बोली के अत्यधिक निकट होने के कारण यह संप्रेषण में बाधा नहीं पहुंचाती । कहानी में वर्णन की भाषा तथा पात्र की भाषा में भी अन्तर कम से कम है । कहानी में विमली गांव की एक साधारण किशोरी है । बचपन में ही परिवार की जिम्मेदारी सिर पर आ जाने के कारण परिपक्व हो जाती है । बरतन मांजने के काम को स्वाभिमान के प्रतिकूल मानकर भट्टे पर काम करती है । बचपन में ही शादी हो जाती है पर उस रूढ़ि को भी स्वीकार कर स्वाभिमानवश दूसरी शादी करने से इंकार करती है । भटटे पर पुरूष-शोषण का करार जबाब देती है । पर असली संघर्ष वहां से शुरू होता है जब वह ससुराल आती है । ससुर की नीयत उस पर खराब हो जाती है और वह इसका उत्तर स्वभाव के अनुकूल, प्रतिहिंसा सेदेती है । ससुर पुरूषवादी अस्त्रों से उसे पराजित कर देता है तथा अन्त में पुरूष प्रधान ग्रामीण पंचायत भी उसे ही दंड देती है पर तब तक वह ग्रामीण समाज व्यवस्था तथा 'पुरूषवादी अहं' को करारा झापड़ रसीद कर चुकी होती है।

शिवमूर्ति ने पूरी कहानी मनोयोग से तथा एक समान भाषा-प्रवाह के साथ लिखी है । बीच में आप इसे छोड़ नहीं सकते । विमली की किशोरावस्था गांव की हर लड़की की किशोरावस्था है । वह बचपन में ही लोगों की नजरें पढ़-पढ़ कर पंडित हो चुकी है । लेकिन 'मरजाद की रक्षा' तथा सामाजिक जीवन के 'सामान्य-व्यवहार के बीच के अन्तर की समझ उसको है । कुइसा मिस्त्री उसको चाहता है पर विमली शादी-शुदा है । अतः उसको झिड़कना भी आता है । पर इस बीच जीवन के सामान्य व्यवहार को भी वह हाथ से नहीं निकलने देना चाहती । आखिर जीवन चार बात बोलने बतियाने का नाम भी तो है । शिवमूर्ति के यहां जीवन के इस 'आदर्श दर्शन' की भाषा भी है -

''पास आते ही कुइसा ऑखे तरेरता है'' अब तेरा आने का टैम हुआ है? दस बजने वाले हैं । चलते समय घड़ी देखा था?''

विमली कुइसा की आदत जानती है । बिना मसखरी किए उसकाखाना हजम नहीं हो सकता। वह भी आंखे तरेरती है-''जेतना काम करेंगे ओतने न मजूरी मिलेगी । तब काहे तोहार छाती फाटत है? और घड़ी देखै अपनी बहिनी क सिखाओ ।''

.....

.....

लेब पकरौ ? गरूआत आही !

कुइसा की नजरें उठती हैं । वह मुस्कराता है ।

अब यह कुछ मुराही करेगा । विमली ताड़ती है और कुइसा के पैरों के पास ईट गिराकर मुस्कराती मिठऊ गाली देती भागती है ।''[८]

पीछे 'सिरी उपमा जोग' कहानी में शिवमूर्ति की प्रेम व्यवहार की स्थितियों में व्यक्त होने वाली भाषा का विश्लेषण किया गया है पर वह सन्दर्भ 'पति-प्रेम' का है । 'तिरिया चरितर' कहानी में युवक-युवती के रूप में विमली ड्राइवर के बीच का प्रेम व्यक्त है । विमली मन ही मन ड्राइवर को चाहती है । वह शादी-शुदा है अतः खुलकर प्रकट नहीं करती । अन्तर्द्वन्द्व उसके मन में चलता है । उसका प्रथम प्रेम है यह अतः

उतना ही संकोची तथा जिज्ञासाशील । इस पूरे संबंध को, विमली के वास्तविक संघर्षशील चरित्र के साथ जोड़कर, शिवमूर्ति ने सुन्दर कथा-भाषा में इसकी अभिव्यक्ति की है । प्रेम का एक अपना मनोविज्ञान होता है । ग्रामीण स्त्री पर इस मनोविज्ञान का प्रयोग करें तो पाते हैं कि वह प्रेम के संबंध में अत्यधिक संकोची पर बेहद निष्कर्षात्मक होती है । मोटी बुद्धि तथा मोटी समझ । पुरूष का 'प्रभुत्ववादी संस्कार' तब उसके सामने देखते ही बनता है । इस सन्दर्भ में शिवमूर्ति की भाषा की 'मनोवैज्ञानिक क्षमता' को देखें-

''.....सच तो यह है कि मैं तुम्हारा मुंह देखने की लालच में चला आता हूँ इतनी दूर, पंद्रह - सोलह हजार का कोयला लादकर । वरना इधर मुंह करके तो मैं .....। बस तुम्हारे कारन ! तुम्हारे कारन यह आदमी मुझे चूना लगाता जा रहा है ।''

''हमारे कारन काहे ?'' विमली की जबान ऐंठ जाती है '' हमारा आपका कौन नाता ? जेतना दिन यहां आ रहे हैं, भेंट मुलाकात बदी है । नहीं तो आप अपने राहते चले जाएंगे, हम अपने ।''

.....

''ऐतना गुस्सा काहे करती हो विमला । एक दिन तुम्हारे बप्पा के पास चलना है ।''

''ऊ काहे ?''

''कुछ मांगता है ।''

''क्या ?''

''तुम्हें ।''

जोर से हॅसी मिवली । सुनकर सारा घाटा, सारी उधारी बिसर गई डरेवर बाबू की ।''[६]

परन्तु इस कहानी में, नारी संवेदना को अभिव्यक्त करते हुए शिवमूर्ति की कथा भाषा ने वास्तविक ऊँचाई वहां प्राप्त की है जब विमली ग्राम पंचायत के सामने संघर्षशील जीवत स्त्रीत्व के साथ खड़ी है तथा आमने सामने संवाद करती है । निस्सन्देह यह ऐसी स्थिति है जहां कोई भी लेखक आसानी से 'आदर्शवाद' का शिकार हो सकता है तथा भाषा द्वारा क्रान्ति की ऊधम मचा सकता है । पर शिवमूर्ति यथार्थ की भूमि को ताकत के साथ पकड़े रहते हैं तथा भाषा में कहीं भी नारेबाजी का शिकार नहीं होते । वस्तुतः एक कहानी की रचना करना मूलतः उस सही भाषा का इस्तेमाल करना है जिसमें उस कहानी के क्षेत्र, विधि तथा दिशा की सामग्री रची जा सके । इस दृष्टि से प्रेमचंद की कहानियों को लिया जा सकता है जिनके अन्तर्गत पात्रों के संलाप से लेकर लेखकीय दृष्टिकोण, अभिव्यक्ति, परिवेश और स्थितियों तक की भाषिक पहचान और परख सम्मिलित है । शिवमूर्ति की कहानियां इस संदर्भ में उल्लेखनीय है । पश्चिमी भाषाविद हैलीडे जिसे 'फील्ड' कहते हैं वह वस्तुतः 'स्थितिगत वास्तव की समझ' है, और शिवमूर्ति की इस कहानी में 'स्थितिगत वास्तव की समझ की भाषा भी मौजूद है-

''देखो लड़की ! तुम पंच के बीच खड़ी हो । पंच के बीच माने भगवान के बीच । यहां न कोई किसी का हितु है न मुद्दई। यहां जो भी बोलना होगा, सच-सच बोलना होगा ! मंजूर?

''तुम घर से किसके साथ भागी । काहे भागी ?''

''किसी के साथ नहीं । अकेली भागी । अपने आदमी के पास जा रही थी कलकत्ता ।''

''तब गहना-गुरिया किसको दे दिया सास का ?''

''मैंने कोई गहना-गुरिया नहीं खोदा । यह सब झूठ है ।''

.....

''सच है ।''

''सच है ।''

''काहे ?''

''क्योंकि रात मेरी झोंपड़ी में दारू पीने वाला, मछली खाने वाला और मेरे साथ मुँह काला करने वाला जानवर यही था । मैं इसे जिंदा जलाना चाहती थी, लेकिन यह बच गया । अब मैं इसका कच्चा मांस खांऊगी ।''

.....

.....

तब तक पतोहू उठकर खड़ी होती है'' मुझे पंच का फैसला मंजूर नहीं । पंच अंधा ा है । पंच बहरा है । पंच में भगवान का सत नहीं । मैं ऐसे फैसले पर थूकती हूँ - आ-क-थू । देखूँ कौन माई का लाल दगनी दागता है ।''[१०]

पर कथा दुहरायी जाती है । विमली के ऐन माथे पर दगनी दाग दी जाती है । 'तिरिया-चरित्रम पुरूषस्य भाग्यम' कथन की स्वीकृति में बीसों सिर एक साथ हिलते हैं। पर पाठक की सहमति का सिर उन सिरों के साथ नहीं होता । कथाकार पाठक की सहानुभूति विमली के लिए बटोर ले जाता है ।

निष्कर्षतः उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण नारी की संवेदना को लेकर शिवमूर्ति की कहानियां यथार्थपरक है । साथ ही, ग्रामीण नारी की विभिन्न भाव स्थितियों तथा घटना व्यापार को जीवन्त करने में उनकी भाषा भी पूरी तरह समर्थ है । इस सन्दर्भ में शिवमूर्ति ने ऐसी 'संवेदनशील' - 'मनोवैज्ञानिक' तथा 'वास्तविक' कथा-भाषा का प्रयोग किया है, जो अपूर्व है ।

१. आलोचना : जनवरी - मार्च १९८६, पृ० १३
२. 'केशर कस्तूरी' संग्रह से, पृ० ३९
३. वही, पृ० ६४
४. वही, पृ० ६५-६६
५. वही, पृ० ६२
६. वही, पृ० १६२
७. वही, पृ० १६३
८. वही, पृ० ९५
९. वही, पृ० ११४
१०. वही, पृ० १४२-१४३

अध्याय -४

'त्रिशूल' का सामाजिक राजनैतिक यथार्थ और शिवमूर्ति की कथा- भाषा

त्रिशूल का सामाजिक - राजनैतिक यथार्थ और शिवमूर्ति की कथा-भाषा

सदी के आखिरी दशक के पूर्वार्द्ध में जब 'त्रिशूल' पहली बार हंस पत्रिका में छप कर आया, तो अपने साथ कई विवाद भी लेकर आया ! राम जन्म भूमि बाबरी मस्जिद विवाद उस समय चरम पर था और यह लघु उपन्यास कहीं न कहीं उस विवाद को गहरे स्तर पर व्यंजित करता था । हांलांकि राम जन्म भूमि बाबरी मस्जिद विवाद के मूल में साम्प्रदायिक चेतना काम कर रही थी और जिसे 'त्रिशूल' व्यक्त करता है पर इसके साथ ही साथ इसकी संवेदना का एक बड़ा हिस्सा व्यापक सामाजिक चिन्ता को भी स्वर प्रदान करता है । खैर इससे पहले कि 'त्रिशूल' में व्यक्त सामाजिक राजनैतिक यथार्थ का विश्लेषण किया जाय, इसके साथ जुड़े विवादों पर एक नजर डालना जरूरी है ।

मशहूर कहानीकार तथा आलोचक दूधनाथ सिंह ने 'त्रिशूल' पर तीखा प्रहार किया'' 'त्रिशूल' गलत विचारधारा के तहत लिखी गई कहानी है और पूरी तरह से जाति युद्ध की वकालत करती है । बसपा और सपा की विचारधारा के सारे समीकरण को एक सोची-समझी साजिश के तहत कहानी में फिट किया गया है ।''[1] कहानीकार शेखर जोशी ने 'त्रिशूल' के अवांतर प्रसंगों की गंभीर आलोचना की तथा यह मानते हुए भी कि ''वह एक संभावनाशील उपन्यास हो सकता था ।''[2] इसे निरर्थक सिद्ध कर दिया । इन गंभीर आरोपों के साथ 'त्रिशूल' को ''जातीय युद्ध का आह्वान बताया गया, तथा हिन्दू धर्म तथा देवताओं का अपमान करने वाला सिद्ध किया गया ।

पर इन आरोपों के साथ-साथ 'त्रिशूल' की प्रशंसा भी काफी की गई । कहानीकार रवीन्द्र कालिया का मत है - 'त्रिशूल' निःसन्देह एक अविस्मरणीय कहानी है जो लोग इस कहानी में जाति युद्ध का आह्वान देख रहे हैं वे एक खास मानसिकता और साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं । आज की परिस्थिति में जब धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता इतनी बढ़ गई है, धर्मांधता पर ऐसा तिलमिलाने वाला प्रहार बड़े

जोखिम और साहस का काम है ।'[३] वहीं लोकप्रिय कथाकार अमरकांत ने 'त्रिशूल' की सार्थकता को लेकर यह मत प्रकट किया - ''जब समाज में जातीय संघर्ष है तो साहित्य में क्यों नहीं आएगा ? पूर्व में जातिवाद पर प्रेमचंद ने 'मुक्ति' और 'सदभाव' कहानी लिखी है, अतः प्रेमचंद की परंपरा को 'त्रिशूल' विकसित कर रहा है तो आप छाती क्यों पीट रहे हैं ?''[४]

इन बहसों से यह साबित होता है कि 'त्रिशूल' एक लघु उपन्यास के रूप में आने के पश्चात काफी लोकप्रिय हुआ है । इसमें व्यक्त यथार्थ की कुछ लोगों ने निन्दा की तो कुछ ने सराहना । निन्दा सराहना के स्वर उपर व्यक्त किए जा चुके हैं । अतः अब जरूरी यह है कि इसमें व्यक्त यथार्थ का विश्लेषण किया जाय ।

मूल रूप से 'त्रिशूल' महमूद की कहानी है । महमूद के माध्यम से मानवीय जीवन की विडम्बना का उद्‌घाटन। त्रिशूल का मूल स्वर है । लेकिन क्या यह केवल महमूद की कहानी है? जैसा कि स्वयं लेखक शुरूआत में ही यह प्रश्न करता है अपने आप से । निःसंदेह यह केवल महमूद की कहानी नहीं है । यह उपन्यास के लेखक की भी स्वयं की कहानी है । जो मध्यवर्गीय जीवन जी रहा है और सामाजिक परिस्थितियों से आक्रांत हैं । यह राजनीति की कोख से निकली उस साम्प्रदायिकता की कहानी है जिसके 'शास्त्री' और 'काला पहाड' दो हथियार हैं । यह उस लोक गायक 'पालें' की भी कहानी है, जो एक शोषणपरक सामाजिक संरचना के सामने अपने अधिकारों के लिये संघर्ष कर रहा है ।

'त्रिशूल' में लेखक स्वयं एक पात्र है । जो सरकारी अधिकारी के रूप में एक जगह से दूसरी जगह स्थान्तरित होकर आया है । महमूद उसका घरेलू नौकर है । देश में राम जन्मभूमि बाबरी मस्जिद विवाद चरम पर है तथा साम्प्रदायिक तनाव गली गली में है । जब तक महमूद का मजहब लोगों के सामने प्रकट नहीं होता तब तक तो उसका जीवन सहज रहता है पर मजहब खुलने के बाद मुहल्ले के स्थानीय नेता शास्त्री जी उसका राजनैतिक उपयोग करने लगते हैं ।अपने पोते का झूठा अपहरण करवाकर महमूद पर आरोप लगाकर उसे जेल में बन्द करवा देते हैं । ये घटना साम्प्रदायिक

तनाव में आग में घी का काम करती है । इधर आरक्षण का उन्माद भी उफान पर है । पालें एकं लोक नायक है जो निचली जातियों का प्रतिनिधित्व करता है । वह हिन्दू धर्म तथा समाज में व्याप्त बुराइयों पर प्रहार करता है । तथा इसी कारण मारा जाता है । उधर महमूद को लेखक बड़ी कोशिश के बाद मुक्त करवाता है । और उसे अपने गांव भेज देता है । पर गांव में उसके मां बाप नहीं है । ठीक यही पर लेखक की एक बडी चिंता के साथ 'त्रिशूल' का अन्त हो जाता है । वह चिन्ता है महमूद के रूप में एक सामान्य मुस्लिम युवक के भविष्य की ।

'त्रिशूल' का पहला स्वर साम्प्रदायिकता है । जो हिन्दू मस्लिम मजहवियों के पारस्परिक टकराव के कारण उत्पन्न है । निःसंदेह इस साम्प्रदायिकता के चारों ओर राजनीति संगठित है । साम्प्रदायिकता ने आज एक विचारधारा की हैसियत पाली है , पर यह तथ्य है, तथा जो इसके इतिहास में जाने से सिद्ध होता है कि साम्प्रदायिकता खासकर आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता के उद्भव एवं विकास के पीछे राजनीति का बहुत बड़ा हाथ रहा है । आजादी से पूर्व सत्ता तंत्र में वर्चस्व की लड़ाई के दौरान आरंभिक राजनेताओं द्वारा इसे प्रयोग किया गया तथा बढ़ावा दिया गया जो आज एक नासूर बन गया है ।

साम्प्रदायिकता रूपी उसी नासूर को फिर बढ़ावा दिया गया - राम जन्म भूमि बाबरी मस्जिद विवाद को हवा देकर । सत्ता तंत्र में अपने वर्चस्व की स्थापना हेतु राजनीतिक दलों ने इसका व्यापक समाज में राजनीतिक प्रयोग किया तथा साम्प्रदायिकता को समाज के लिये कटु राजनैतिक यथार्थ बना दिया। और जैसा कि विपिनचन्द्र लिखते हैं कि इस स्थिति में ''साम्प्रदायिकता अधिकतर उन लोगों द्वारा किया गया प्रयास हो गई 'जो सामाजिक स्थिति को सही ढंग से समझे बिना अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक संकट की स्थिति में उलझ पड़ते हैं ।''[५] १९९२-९३ जो 'त्रिशूल' की कथा भूमि है में हम देखते हैं कि समाज में यही कटु राजनैतिक यथार्थ सर्वत्र व्याप्त था । साम्प्रदायिकता उस दौरान की चालू राजनीति का गर्भपात सी हो गई थी । एक तर्कहीन तथा विवेकहीन स्थिति, जहां मानव मानव के बीच केवल साम्प्रदायिक भिन्नता ही विवाद का जड़ बन गया । शिवमूर्ति ने 'त्रिशूल' में ऐसे ही यथार्थ का दर्शन कराया

है । जहां राजनीति ने अपने 'साम्प्रदायिकता' रूपी औजार को समाज के कोने-कोन में फैलाया है । बच्चा-बच्चा इस औजार को पकड़े हुये था तथा इस स्थिति में मानवीय संवेदना कहीं खो गई थी ।

राजनीतिक रूप में प्रदूषित एक ऐसे ही भयंकर यथार्थ को व्यक्त करना है , 'त्रिशूल' जहां शास्त्री जी जैसे राजनीतिज्ञ अपने अनुसार सामाजिक स्थितियों को बना लेते हैं, जहां देश की पुलिस स्थिति को बनाने के बजाय बिगाड़ देती है तथा आपने क्रूरतम रूप में सामने आती है, जहां 'काला पहाड़' जैसे मजहवी तत्व किसी को केवल जान से मारने पर ही यकीन करते हैं, तथा जहां लेखक जैसे लोग सोचते हैं कि स्थितियां मानवीय संवेदना को जगाने से ठीक हो जाएगी, पर वे नहीं होती । निःसंदेह ऐसी ही स्थितियां ६२-६३ में व्याप्त थी तथा जिसे हम तत्कालीन लेखों अखबारों पत्र पत्रिकाओं में यत्र तंत्र सर्वत्र देख सकते हैं । 'त्रिशूल' में इसे ही साहित्यिक स्वर प्रदान किया गया है ।

'त्रिशूल' में जहां एक ओर साम्प्रदायिकता का यथार्थ अभिव्यक्त है तो दूसरी ओर एक खास सामाजिक व्यवस्था या संरचना का यथार्थ भी उसके दायरे में है । यह संरचना या व्यवस्था है- हिन्दू समाज । शिवमूर्ति ने पाले जैसे चरित्र को केन्द्र में रखकर एक ऐसी ही कहानी व्यक्त की है जो 'त्रिशूल' की मूल संरचना से कहीं भी अलग नहीं दिखती । ६२-६३ की स्थितियों में 'त्रिशूल' का यह स्वर कहीं से भी अवास्तविक नहीं दिखता ।

हिन्दू समाज में अपेक्षाकृत निचली जातियां सदियों से अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करती आ रही हैं । १९८९-९० में आरक्षण आंदोलन के बाद यह संघर्ष और भी तेजी पकड़ता है । लेकिन इसी दौरान इसी समाज की उच्च जातियां इस संघर्ष को दबाने का प्रयास करती हैं । उपन्यास में पाले की हत्या के माध्यम से शिवमूर्ति ने इसी तथ्य को व्यक्त किया है ।

वास्तव में 'त्रिशूल' में इस सामाजिक यथार्थ का चित्रण बड़े ही स्वाभाविक ढंग से किया गया है । ६२-६३ के वर्षो को तो छोड़िए आज भी हमारे समाज का यथार्थ

लगभग वही है । जाति आज भी सामान्य व्यवहार में एक बाधक तत्व बनी हुई है । त्रिशूल में मिश्रा जी एवं दरोगा जी के बीच में जाति ही बाधक बनती है । जातीय विद्वेष और असमानता मूलक चरित्र के कारण 'त्रिशूल' में वर्ण व्यवस्था के प्रति तीखी आलोचना है । उपन्यास में ऐसा आलोचक लोकगायक पाले है, जो कबीर के आर्दशों को मानने वाला है । आरक्षण आंदोलन के बाद हम देखते हैं कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था जो पहले लगभग सुषुप्त ही थी, में एक सुगबुगाहट शुरू होती है । समाज की अपेक्षाकृत निचली जातियां में एक मुक्ति चेतना उत्पन्न होती है तथा अपने अधिकारों की प्राप्ति हेतु इनका संघर्ष भी तीव्र होता है ।

मुक्ति की यह चेतना दो स्तरों पर आगे बढ़ती है । एक स्तर पर इसका स्वर जनजागरण का है, तो दूसरे स्तर पर हिंसात्मक । जन जागरण का अभियान तो बहुत पहले से चला आ रहा था । मध्यकाल में कबीर जैसे कवियों ने जहां यह महती भूमिका निभाई तो वहीं आधुनिक भारत में गांधी अम्बेडकर आदि ने अपना योगदान दिया । आरक्षण के बाद जनजागरण के इस अभियान में और भी तीव्रता आई ।

पर मुक्ति की इस चेतना का एक स्वर हिंसात्मक भी हुआ । ८९-९० में आरक्षण लागू होने के बाद इस स्वर को हम उभरता हुआ देख सकते हैं । आरक्षण विरोधियों ने आरक्षण के समानता मूलक दर्शन को नहीं समझा और आरक्षण समर्थकों ने इसे अपना जन्मजात अधिकार समझा फलतः दो वर्ग बन गये और इनमें हिंसा शुरू हो गई, चूँकि आरक्षण का आधार जातिगत था अतः इसे जातीय हिंसा भी मान सकते हैं ।

लेकिन 'त्रिशूल' में शिवमूर्ति ने कहीं भीकिसी खास दृष्टिकोंण से कथानक का विकास नहीं किया है । 'त्रिशूल' में वहीं सामाजिक यथार्थ अभिव्यक्त है जो तत्कालीन समाज में व्याप्त था । रणवीरपुर वालों तथा निम्न जातियों के बीच संघर्ष उसी समाज का यथार्थ है । जब कि पाले जैसे चरित्र की हत्या सफदर हासमी जैसे व्यक्ति की हत्या से जुड़ी हुई है । सामाजिक परिवर्तन के लिये प्रयत्नशील ऐसे व्यक्तियों के पीछे कुछ क्रूर शक्तियां पड़ी रहती है तथा मौका मिलने पर उन्हें समाप्त कर देती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'त्रिशूल' में व्यक्त राजनैतिक सामाजिक यथार्थ वास्तविक है । राजनीति की कोख से जन्मी साम्प्रदायिकता 'त्रिशूल' से पूर्व कुछ उपन्यासों में आ चुकी है । 'तमस', 'शहर में कफ्र्यू' आदि उपन्यास इस संदर्भ में उल्लेखनीय है । पर ९२ की घटना ने साम्प्रदायिकता को एक नया मोड़ दिया । इसे साहित्यिक स्वर देने की जरूरत थी, जिसे 'त्रिशूल' ने पूरा किया । इसी तरह 'आरक्षण - पश्चात' भारतीय समाज भी एक साहित्यक स्वर की अभिलाषा रखता था । जिसे भी 'त्रिशूल' ने पूर्ण किया। ये दोनों ही यथार्थ हम देखते हैं कि कमोवेश समाज के वास्तविक यथार्थ थे/हैं । चरित्र तथा स्थितियां समाज में जैसे थे, उपन्यास में वैसे ही आए हैं । यहां लेखक का अपना कोई पूर्वाग्रह काम नहीं करता ।

खैर, इस विवेचन के दूसरे पक्ष की बात करें, तो हम देखते हैं कि उपर्युक्त यथार्थ को अभिव्यक्त करने में शिवमूर्ति की भाषा भी बड़ी कारगर है । जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि भाषा को लेकर शिवमूर्ति बहुत 'सहज' है । उनके यहां भाषा का आडम्बर कम से कम है । सहज एवं सरल भाषा का वे प्रयोग करते हैं । जिससे बात पाठक तक सम्प्रेषित हो सके । 'त्रिशूल' में ऐसी ही सहज एवं सरल कथा भाषा हमें मिलती है ।

किसी भी साम्प्रदायिक विचारधारा का लक्ष्य सामाजिक मानस पर एकाधिकार कायम करना होता है । और इसके लिये साम्प्रदायिक तत्व भाषा एवं भावना की ताकत का प्रयोग करते हैं । वास्तव में भाषा यथार्थ को व्यक्त भर नहीं करती, वह लोगों की चेतना के धरातल पर यथार्थ का निर्माण भी करती है । इसलिये मुहावरे के अनुसार कुत्ते को मारने के पहले उसे बदनाम करना जरूरी होता है । ९२ में साम्प्रदायिक ताकतों ने इसी तकनीक का सहारा लेकर लोगों के संस्कार को विकृत किया और इस विकृत का माध्यम भाषा को बनाया । हिन्दू साम्प्रदायवादियों ने भौतिक रूप से मस्जिद को ध्वस्त करने के बहुत बहुत पहले से लोगों की चेतना में मस्जिद की जगह एक 'विवादित ढांचा' खड़ा कर दिया तो वही मुस्लिम साम्प्रदायवादियों ने इसे 'पाक' जगह घोषित कर दिया । भाषा का यह सूक्ष्म, सधा हुआ दुरूपयोग संस्कार के विकृतिकरण का सबसे प्रभावशाली माध्यम सिद्ध हुआ । त्रिशूल में साम्प्रदायिकता के इस चरित्र का

शिवमूर्ति ने सूक्ष्म भाषा में निरूपण किया है । इससे स्पष्ट होता है कि 'त्रिशूल' की कथाभाषा साम्प्रदायिक विचारधारा की 'जटिल सी लगने वाली निर्मितियों' को उघाड़ने वाली भाषा है

''क्यो नहीं साहस .। गाय पालकर आप सच्चे हिंदू का धर्म निबाह रहे हैं । गो-ब्राह्मणों की सेवा .। आपको देखकर ही लगता कि आप आस्थावान व्यक्ति हैं । और जीवन का मूल है आस्था ।''[६]

ये निर्मितिया केवल गद्य की भाषा में ही नहीं वरन लोकोक्तियों तक में भर दी गई । दो उदाहरण दृष्टव्य है-

''कूकर पानी पिये सुड़क के ।
तबौ न माने बात तुरूक के ।।[७]

तथा

''तिल गुड़ भोजन तुरूक मिताई ।
पहिले मीठ, पीछे करूआई । [८]

समाज में बढ़ रही साम्प्रदायिकता और उसके कारण मानवीय संवेदना का क्षरण, एक संवेदनशील व्यक्ति के लिये त्रासद होती है । वह समझ ही नहीं पाता कि आखिर इसके पीछे का तर्क क्या है ? कोई सार्थक उद्देश्य या शैतानी शौक ? उधेड़बुन की यह स्थिति उसे मानसिक रूप से विक्षिप्त सी बना देती है और फिर उसके बाद दबाब उसके अवचेतन मन पर पड़ता है । बार-बार उसके मानस पटल पर इसकी भयावह नंगी तस्वीर उत्पन्न होती है । ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति की भाषा चित्रों में कहती है, सुनती है । पूरा परिवेश चित्रवत् समान आता है । और अभिव्यक्ति का रूप काव्यमय हो जाता है । 'त्रिशूल' में कथा भाषा कुछ स्थलों पर ऐसी ही काव्यात्मक ऊंचाई प्राप्त करती है -

''सपने में शास्त्री जी दिखते हैं - सफेद कपड़ों में । एक ऊंचे मेज पर भाषण दे रहे । सामने अपार जन समूह । मुंडित सिर । श्वेत वस्त्र । पंक्तिवद्ध जैसे किसी के श्राद्ध के मौके पर इकटठे हों । किसका श्राद्ध कर रहे हैं ये लोग ? कौन मरा है ? कि कोई चुनाव सभा है यह ? ..... देखते देखते यह पंक्तिवद्ध लोग बगुलों में बदल जाते हैं । मैदान तालाब बन जाता है । तालाब से मोटी-मोटी मछलियां गटकते पंक्तिवद्ध बगुलें । .....दृश्य परिवर्तन फिर होता है । शास्त्री जी दो लाठियों को पैर के अंगूठे और उँगली के बीच में फंसाकर अपने शरीर का जमीन से दो ढाई फिट उपर साधे खड़े भाषण दे रहे हैं । ..... साधिए, साधिए । एकै साधै सब सधैं । केवल लाठी साधना सीख लीजिये । सभी निशाने सध जायेंगे । ..... आस्था ही हमारे पंथ का मूल है । और आस्था का सबसे बड़ा शत्रु है तर्क । ..... जैसा कि गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है - मामेकं शरणं व्रज । सबको लात मारकर, सबका चूल्हा फोड़कर मेरी शरण में ..... क्या तुम गीता क विरूद्ध जाओगे ।

- फिर दृश्य परिवर्तन । हजारों हजार भगवा वस्त्रधारी लोगों की भीड़ जिसका कद लाठियों के सहारे तीन चार फिट तक ऊंचा उठ गया है, पंक्ति के पीछे की ओर पिछडती जा रही है । कहां है वह कैलाश ? यहां तो अत्यन्त गहराई है । कुहासे के धुंध से ढकी .....

''सब मर गए ।''

''कौन मर गया ?''[६]

याद आती है इस प्रसंग में मुक्ति बोध रचित 'अधेर में' की पंक्तियां, वहां भी यथार्थ की भयाक्रान्तता का बोझ इतना गहरा है कि एक संवेदनशील मन इसी प्रकार की चिन्तनपूर्ण स्थितियां में अपने को पाता है । उसकी भाषा में वे भयानक चित्र आते रहते हैं, आते रहते हैं और हर चित्र यथार्थ की वास्तविकता और संभावित तस्वीर के साथ । मुक्ति बोध ने एक ऐसे ही यथार्थ को साधा है अपनी काव्याभाषा में, और इधर त्रिशूल में एक से यथार्थ के कारण कथा-भाषा, काव्यभाषा में परिणत होकर अंधेरे में की याद दिला जाती है ।

वस्तुतः भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम भर नहीं है । वह हमारे संस्कार तथा व्यवहार में भी निवास करती है । विजेता की भाषा पराजित की भाषा से भिन्न होती है । स्त्री की भाषा, पुरूष की भाषा से भिन्न होती है । भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति या वर्ण एक सच्चाई है । इस व्यवस्था का शोषण परक चरित्र भाषा में भी व्यक्त होता है । यहां भाषा संस्कार का एक हिस्सा तो हो ही जाती है, पर एक खास तरह के बिकास ने इसका एक इन्द्रजालिक रूप भी तैयार कर दिया है । 'त्रिशूल' में 'जाति की चेतना' को प्रकट करने वाली, या मोटे रूप में कहें तो 'वर्गीय भाषा' का एक सुधड़ प्रयोग देखें -

''इसका जबाब देना उतना आसान नहीं है जितना लगता है । हम भी बराबरी के काबिल हैं । युगों से दबे कुचलों इन लोगों की गरीबी दूर हों, धार्मिक कुरीतियों की जकड़न से मुक्ति मिले । आज भाषण में जो कुछ पाले ने मंदिर मुद्दे पर कहा, वही विचार किसी भी समझ वाले के होंगे । लेकिन इनके अंदर ऊंची जातियों के प्रति नफरत की भावना भी बढ़ रही है । ये हम लोगों के खेतों में मजदूरी नहीं करते, ताकि हमारे खेत परती पड़े रहें । हम परेशान हैं । इनके जो नये नये लौंडे निकल रहे हैं, उनमें अवज्ञा का भाव इस कदर है कि आँखों में आँखें डालते हुए सामने से निकल जायेंगे न पैलगी करेंगे, न प्रणाम । देखकर सूती भर खून घट जाता है ।''[१०]

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'त्रिशूल' में व्यक्त सामाजिक-राजनैतिक यथार्थ, न केबल बास्तविक है । अपितु महत्वपूर्ण भी है । ६२ की साम्प्रदायिकता को 'त्रिशूल' ने एक मजबूत साहित्यिक स्वर प्रदान किया है । वहीं दूसरी ओर समाज में सुगबुगाते अन्य परिवर्तनों का भी 'त्रिशूल' में सटीक रेखांकन है । प्रेमचंद की ही तरह शिवमूर्ति 'त्रिशूल' में 'जाति' को अभिव्यक्त करते हैं और इस संदर्भ में त्रिशूल कहीं से भी पूर्वाग्रही उपन्यास नहीं दिखाई देता ।

'त्रिशूल' की कथा भाषा भी इस यथार्थ को प्रकट करने में समर्थ रही है । जहां साम्प्रदायिकता की जटिल सी लगने वाली 'निर्मितियां' को उघाड़ने में यह समर्थ हुई है, तो वहीं इसने एक काव्यात्मक ऊंचाई भी प्राप्त की है ।

१. 'हंस पत्रिका, अंक फरवरी १९९४, पृ० ४८

२. वही, पृ० ४९

३. वही, पृ० ४८

४. वही, पृ० ४९

५. बिपिन चन्द्र : आधुनिक भारत में विचार और राजनीति, पृ० १३८

६. 'त्रिशूल' पृ० ७

७. वही, पृ० ४१

८. वही, पृ० ४४

९. वही, पृ० १००-१०२

१०. वही, पृ० ७६

सारांश

सांराश

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध - शिवमूर्ति की कथा भाषा-को चार भागों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्याय में हिन्दी कथा भाषा के विकासमान रूप को दिखलाने का प्रयास है । प्रायः अंग्रेजी साहित्यकारों द्वारा यह आरोप लगाया जाता है कि हिन्दी की कथा-भाषा अविकसित अथवा अल्पविकसित है । लेकिन यह आरोप ठीक नहीं है। हिन्दी कथा भाषा अपने पूर्ण विकसित व्यवस्थित तथा सशक्त रूप में आज हमारे सामने हैं । उसमें अदम्य प्राण शक्ति है जिसे उसे अपने निरन्तर प्रवाह द्वारा अर्जित किया है । यह प्रवाह या विकास मुख्यतः तीन क्रमों में दिखलाया जा सकता है -

१. प्रेमचन्द्र पूर्व हिन्दी कथा-भाषा

२. प्रेमचन्द्र युगीन हिन्दी कथा-भाषा

३. प्रेमचन्द्रोत्तर हिन्दी कथा-भाषा

प्रेमचन्द्र पूर्व का समय हिन्दी कथा भाषा का निर्माण काल है । इस समय हिन्दी कथा-भाषा के निर्माण का कार्य एक तरफ भारतेन्दु मण्डल द्वारा किया गया तो दूसरी ओर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा इसे व्यवस्थित तथा प्रवाहशील बनाने का कार्य किया गया । इन दोनों के प्रयत्नों ने प्रेमचन्द्र के लिए एक पुख्ता आधार तैयार कर दिया । प्रेमचन्द्र युग में, खासकर प्रेमचन्द्र के हाथों कथा-भाषा एक विशिष्ट रूपाकार लेती है । प्रेमचन्द्र न केवल इसका नवीन निर्माण करते हैं बल्कि इसके प्रयोगों के महानतम क्षेत्रों का भी चयन कर देते हैं 'कफन' 'ठाकुर का कुंआ' जैसी उनकी कहानिया तथा 'गोदान' जैसा उपन्यास इस सन्दर्भ में मील का पत्थर है । प्रेमचन्द्रोत्तर काल भी हिन्दी कथा भाषा के लिए निरन्तर प्रयोगों का काल रहा है । आरंभिक यशपाल, जैनेन्द्र तथा अजेय आदि के प्रयत्न इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं । 'नई कहानी' आंदोलन द्वारा भाषा प्रयोग की पद्धति तथा उसके क्षेत्र में अभिनव विस्तार होता है । एक परम्परा जो प्रेमचन्द से चली आ रही थी रेणु के लेखन में सर्वोच्चता को प्राप्त करती है । 'मैला आंचल' ने हिन्दी कथा-भाषा को एक गौरवपूर्ण दिया । यह

परम्परा आगे शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय आदि के लेखन में भी विस्तार पाती है । उधर 'नई कहानी' आंदोलन के अन्तर्गत कथा-भाषा केक्षेत्र में अभिनव प्रयोग चल रहे होते हैं । राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, मोहन राकेश, कमलेश्वर आदि लेखक कथा भाषा की सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति का मार्ग तलाश तथा तैयार करते हैं । निर्मल वर्षा इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं । इनके यहां कथा, भाषा, काव्यभाषा के नजदीक आने का प्रयास करती है, जो निश्चित रूप में एक बड़ी उपलब्धि है अपने पूर्ववर्तियों द्वारा निर्मित इस ठोस आधार पर ही भावी पीढ़ी हिन्दी कथा भाषा को निरन्तर नवीन तथा समृद्ध बनाती है ।

दूसरे अध्याय में शिवमूर्ति की कथा- भाषा के स्वरूप का विवेचन है । सर्वप्रथम भाषा का एक समाज सापेक्ष अध्ययन करने का प्रयास किया गया है । निस्सन्देह भाषा और समाज अपनी मर्यादा रेखा की सीमा में स्वायत्त है पर वास्तविकता यह है कि दोनों एक दूसरे को निर्धारित करते हैं । निश्चित रूप से कथा-भाषा की संरचना के निर्माण एवं रूपान्तरण के पीछे सामाजिक यथार्थ का दबाब होता है पर यह भाषा भी कृति के यथार्थ को प्रभावित करती है । भाषा के सामाजिक प्रकार्यों के फलस्वरूप यह सिद्धान्त उभर कर सामने आता है कि कथा-भाषा के विश्लेषण द्वारा हम कथाकार के अनुभवों तथा सरोकारों की प्राथमिकताओं का पता लगा सकते हैं । इन्ही सैद्धान्तिक प्रस्थापनाओं के आलोक में आगे शिवमूर्ति की कथा-भाषा का विवेचन है । विवेचन के केन्द्र में मूलतः उनकी कहानियॉ हैं । इस सन्दर्भ में हम देखते हैं कि शिवमूर्ति की कथा-भाषा, प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाती है तथा रेणु के अत्यधिक - सन्निकट है ! शिवमूर्ति रेणु की ही तरह लोक जीवन से विषय उठाते हैं तथा ग्राम गीत, ग्राम गाथा, लोकोक्ति, मुहाबरे आदि का सजग एवं सटीक प्रयोग करते हैं । समकालीन कथाकार जहां विचारोत्तेजक भाषा तथा 'ठूसने-ठासने' की प्रवृत्ति के शिकार होते हैं, जबकि वही शिवमूर्ति कथारस और पठनीयता को ध्यान में रखकर सृजन की ओर आगे बढ़ते हैं । शिवमूर्ति का यह गन्तव्य साहित्य के आज के 'जनवादी-दर्शन' के सन्दर्भ में स्तुत्य है ।

हिन्दी कहानी की मुख्य धारा में आज प्रेम संबंधों के चकाचौंध के बीच ही स्त्री संवेदना का स्वर अधिक मुखरित होता दिखाई देता है । वहीं ग्रामीण नारी की सिसकती संवेदना का स्वर तो और भी कम है । शिवमूर्ति ने इसी ग्रामीण नारी को अपनी कहानियों के केन्द्र में लिया है । इसी नारी की संवेदना को तीसरे अध्याय में, विवेचन का केन्द्र बनाया गया है । 'केशर-कस्तूरी' संग्रह में शिवमूर्ति कुछ सशक्त ग्रामीण नारी चरित्रों को गढ़ने का प्रयास करते हैं । 'कसाई बाड़ा' का शनिचरी, 'अकालदंड' की 'सुरजी', तिरिया चरित्तर' की 'विमली' तथा 'केशर-कस्तूरी' की 'केशर' इनमें प्रमुख हैं । ये आज के भारतीय समाज की संघर्षशील ग्रामीण नारियों का प्रतिनिधित्व करती है । हम देखते हैं कि आज जबकि सत्ता का प्रत्याभोजन निचले स्तर तक जा रहा है तो भी ग्रामीण नारी शोषित और उपेक्षित बनी हुई है । शिवमूर्ति ने नारी की इसी संवेदना को ठीक ग्रामीण समाज से उठाया है - अपनी 'संवेदनशील कथा-भाषा' के साथ ! हम देखते हैं कि ग्रामीण नारी के विविध रूपों का चित्रण करने में तथा उसके संघर्षशील व्यक्तित्व को उभारने में शिवमूर्ति की कथा-भाषा सफल हुई है । हम यह भी देखते हैं कि शिवमूर्ति की भाषा का संवेदना से तथा इस संवेदना का सामाजिक यथार्थ से घनिष्ठतम संबंध बन पड़ा है ।

चौथा अध्याय शिवमूर्ति के उपन्यास 'त्रिशूल' पर केन्द्रित है । राजनीति की कोख से निकली साम्प्रदायिकता '९२' में राम जन्म भूमि बाबरी मस्जिद विवाद के कारण चरम पर थी । इस साम्प्रदायिकता ने समाज को विषाक्त बना कर रख दिया था, जिसमें एक सच्ची मानवीय संवेदना का कोई स्थान न था । महमूद के जीवन को केन्द्र में रखकर इसी तथ्य को सामने लाता है 'त्रिशूल' । 'त्रिशूल' पर साम्प्रदायिकता की इकहरी अभिव्यक्ति का आरोप है पर मेरी समझा में 'त्रिशूल' नब्ज पर उंगली रख देने में सफल है । मूल समस्या राजनीति की कोख है जिस पर लात मारना ही एकमात्र इलाज है ।

'सदगति' जैसी कहानियों में प्रेमचंद ने 'जाति' समस्या का खुले आम चित्रण कर एक सम्भावनापूर्ण मार्ग तैयार किया था । पर आज हम देखते हैं कि भारतीय

राजनीति ही नहीं साहित्य से भी जाति को निष्कासित करने की साजिश रची जा रही है । वास्तव में जाति व्यवस्था भारतीय समाज की मूलभूत समस्या है । इसका मुकाबला किए बगैर न कोई मुक्तिकामी संस्कृति-विमर्श संभव है और न कोई जनोन्मुख राजनीति कार्यवाही । लेकिन इस यथार्थ को निरन्तर भुलाया गया । आश्चर्य होता है कि भारतीय समाज के परिवर्तन कामी तबकों ने जाति के यथार्थ स्वरूप और भूमिका को समझने में भूल क्यों की ? आखिर क्या कारण है कि भारत में समाजशास्त्र के जनक प्रो० घुरये से लेकर मार्क्सवादी समीक्षक डा० रामविलास शर्मा तक बहुत से विद्वान यह साबित करने की जी तोड़ कोशिश करते रहे हैं कि जाति व्यवस्था में अनोखा कुछ नहीं है । यह विश्वव्यापी सामंतवाद का भारतीय रूप भर है, जिसकी खबर लेने के लिए 'आधुनिकीकरण' या 'पूंजीबाद से संघर्ष' ही पर्याप्त और सही रणनीति है । क्या कारण है कि हर क्षेत्र में जाति की गुपचुप जोड़-तोड़ करने वाले तो राष्ट्रवादी या प्रगतिशील माने गए जबकि इसे बौद्धिक विमर्श और राजनीतिक कार्यवाही का विषय बनाने वालों को बौद्धिक सहानुभूति मिलना तो दूर की बात, उन्हें बार-बार देश तोड़क, समाज तोड़क और वर्ग तोड़क कहकर धिक्कारा गया ? इस डिम्बना के कई कारणों में से सबसे बुनियादी कारण यह यप्रतीत होता है कि सामाजिक यथार्थ का परीक्षण करने के औजार ऐसे ढंग से विकसित किए गए हैं कि जहां तक हो सके, आत्मपरीक्षण टाला जा सके । वर्गगत चतुराई और व्यक्तिगत भेलेपन के इस सुखद संयोग का ही परिणाम है कि जाति का सवाल हो या स्त्री मुक्ति का आदिवासियों की स्थिति का सवाल हो या सामाजिक नैतिकता का ये सारे सवाल समाज सुधार के मान लिए गए ।

शायद इसीलिए जब 'त्रिशूल' में जाति एक कड़वे यथार्थ के रूप में एकदम सामने आ जाती है तो इसे 'जातिय युद्ध का आह्वान' करने वाला उपन्यास बता दिया जाता है । इस तथ्य के बावजूद कि शिवमूर्ति किसी धक्कामार वाद का प्रवचन करते नहीं दिखाई देते । आरक्षण आंदोलन के बाद सामाजिक यथार्थ जिस तरह से बना, बिगड़ा शिवमूर्ति ने चित्रवत त्रिशूल में वही पेश किया ।

इसी अध्याय में हम शिवमूर्ति की कथा-भाषा की शक्ति का भी निदर्शन करते हैं । साम्प्रदायिकता की 'जटिल सी लगने वाली निर्मितियों' को उघाड़ने में उनकी भाषा समर्थ सिद्ध हुई है । इसके साथ ही साथ वर्गीय भाषा का सूक्ष्म प्रस्तुतीकरण करते हुए 'त्रिशूल' में शिवमूर्ति की कथा-भाषा ने एक 'काव्यात्मक ऊँचाई' भी प्राप्त की है ।

सन्दर्भ सूची

सन्दर्भ सूची

(अ) आधार ग्रन्थ

१. शिवमूर्ति : 'त्रिशूल'
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली १९९५

२. शिवमूर्ति : 'केशर कस्तूरी'
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९१

(आ) सहायक ग्रन्थ

१. धर्मेन्द्र गुप्त (सं०) : नवें दशक का कथा-यात्रा साहित्य सहकार प्रकाशन १९९४

२. वेद प्रकाश अमिताभ : हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में मूल्य संक्रमण वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९७

३. मैनेजर पाण्डेय : साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका हरियाणा साहित्य अकादमी,चण्डीगढ़, १९८९

४. डा०कृष्ण रैना : हिन्दी कथा-साहित्य : विविध सन्दर्भ विभूति प्रकाशन, नई दिल्ली, १९८७

५. डा० देवराज उपाध्याय : कथा साहित्य के मनोवैज्ञानिक समीक्षा सिद्धान्त सौभाग्य प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७४

६. विजय मोहन सिंह : कथा समय
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९३

७. डा० राजेन्द्र पंजिधार : हिन्दी कथा साहित्य पूर्व परिच्छेद अंकुर प्रकाशन, नई दिध्लली, १९८५

८. डा० नरेन्द्र मोहन : समकालीन कहानी की पहचान, प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली, १९८९

९. डा०पुरूषोत्तम अग्रवाल : संस्कृति : वर्चस्व और प्रतिरोध
राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली १९९५

१०.विपिन चन्द्र : आधुनिक भारत में विचारधारा और राजनीति अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, १९९७

११. डा० सत्य प्रकाश मिश्र : गोदाम का महत्व
नई कहानी, इलाहाबाद, १९९२

१२.राम स्वरूप चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, १९८७

१३.गोपाल राय : उपन्यास का शिल्प

बिहार हिन्दी ग्रन्थ, पटना १९७३

१४.डा०देवीशंकर अवस्थी(सं०) नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९७३

१५.कात्यायनी : दुर्ग द्वार पर दस्तक परिकल्पना प्रकाशन,लखनऊ, १९९७

१६.डा० नगेन्द्र (सं०) : हिन्दी साहित्य का इतिहास

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९८९

(इ) पत्र-पत्रिकाएं

१. हंस

२. आलोचना

३. साक्षात्कार

४. भाषा

५. इंडिया टुडे

६. वागर्थ

७. पहल